राणी (राकरेश)
अपने देश का इतिहास

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस की प्रथमा परीक्षा में निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार।

सामाजिक-शास्त्र—भाग पहला

अपने देश का इतिहास

लेखक

रामरंग शर्मा 'शास्त्री'

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

पो० बॉ० नं० ७५

नेपालीखपरा, बनारस

[१९५५]

[मूल्य १॥) रुपया

प्रकाशक
सुन्दरलाल जैन,
मैनेजिंग प्रोप्राइटर,
मोतीलाल बनारसीदास
नेपालीखपरा, बनारस ।

मुद्रक
शान्तीलाल जैन
जैनेन्द्र प्रेस,
नेपाली...

समर्पण

इतिहास ज्ञान के मर्मज्ञ

आचार्य प्रवर

श्री विशुद्धानन्दजी पाठक, एम० ए०

प्रोफेसर डी० ए० वी० डिग्री कॉलेज, इतिहास विभाग, बनारस

के

कर कमलों

में

विशुद्धानन्दकारुण्यात् सार्थनामन् गुरो मम।
तनीयसीं कृतिन्त्वेताम् औदार्याद्दुररीकुरु॥

निवेदन

प्रस्तुत इतिहासकी छोटी-सी पुस्तकको मैं 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्रबल समर्थक ऋषि महर्षियों की सन्तान के सम्मुख रखता हुआ अवश्य अपने को सौभाग्यशाली समझ रहा हूँ। क्योंकि इधर कुछ दिनों से पाश्चात्य विद्वत्समाज और उसके वाक्य को ब्रह्मवाक्य माननेवाले भारतीय इतिहास-कार बड़े गर्व से कहने लगे हैं कि 'प्राचीनकाल में भारत के लोग इतिहास ज्ञान से पूर्णतया अपरिचित थे।' इस कथन में यदि पूर्ण असत्यता नहीं तो पूर्ण अज्ञता अवश्य कही जा सकती है। क्योंकि हमारे पूर्वज इतिहास को पंचम वेद मानकर सदैव उसके सामने नतमस्तक होते रहे हैं। कहा भी है 'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम्। इतिहास-पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्॥ छान्दोग्य ७।१।' इतना ही नहीं अपने पवित्र ग्रन्थ वेदों की जानकारी के लिये इतिहास का पठन-पाठन अनिवार्य भी कहा है—

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥

'अस्तु, यह एक सर्वमान्य विचार है कि संसार की कोई भी उन्नत जाति इतिहास का आश्रय लिये बिना चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकती। भारतीयों को परतन्त्रता की निबिड़ शृङ्खलाओं में बाँधने के लिये लार्ड मैकाले का कहना था कि 'भारतीयता रूपी वृक्ष के इतिहास रूपी मूल को हमें काट देना चाहिये। इसके बाद इसकी शाखा और पत्ते तो स्वयं सूखकर गिर जायेंगे'। क्या सचमुच मैकाले का यह कथन सत्य है? उत्तर में अवश्य ही स्वीका-रात्मक ध्वनि ही करनी पड़ती है, क्योंकि इतिहास में शताब्दियों पूर्व की ध्वनि गूँजती रहती है, जिसमें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का स्पष्ट आख्यान रहता है। अतीत की मनोरम और स्वर्णिम स्मृतियों का दिग्दर्शन कराकर इतिहास ही मानव से कहलाता है—

न यत्र वैकुण्ठ कथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशकथा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥

अंग्रेजी काल में जितने इतिहास लिखे गये प्रायः उनके सामने सदैव अपने गौरांग प्रभुओं को प्रसन्न रखने का प्रमुख विषय था। किन्तु अब हम स्वतन्त्र हैं, सरकार हमारी है और हम सरकार के हैं। अतः अब हमें वास्तविक इतिहास का ज्ञान होना चाहिये। इसी विचार से वैदिक काल से लेकर स्वतन्त्रता काल तक के प्रमुख विषयों का अध्ययन हमारे राजकीय संस्कृत कॉलेज के अधिकारियों ने प्रथमा के छात्रों के लिये अनिवार्य कर दिया है, जो आवश्यक भी था। प्रथमा या प्रथमा की समकक्ष श्रेणियों के लिये जो भी अभी तक प्रायः पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनमें छात्रों की योग्यता पर ध्यान दिये बिना अपनी योग्यता का दिल खोलकर परिचय दिया गया है, जो छोटी कक्षाओं के छात्रों के लिये साधक न होकर प्रायः बाधक ही सिद्ध हो रही हैं। अपने प्रथमा के छात्र-बन्धुओं की इस कठिनाई को सामने रखकर मैंने इतिहास लिखने का विचार किया। इसमें मुझे कहाँ तक सफलता मिली इसका निर्णय प्रथमा के छात्र ही करेंगे।

पुस्तक अतीव शीघ्रता से लिखी गई है, इसलिये त्रुटियों के अभाव का दावा नहीं किया जा सकता, फिर भी त्रुटियों से छुटकारा पाने का प्रयास किया गया है। पुस्तक लिखने में मुझे अनेक कृतियों का सहारा लेना पड़ा, जिसके लिये मैं अवश्य उन कृतिकारों का आभारी हूँ। विशेषतया अपने आचार्य श्री विशुद्धानन्दजी पाठक एम० ए० प्रोफेसर इतिहास विभाग, डी० ए० वी० डिग्री कालेज बनारस का जिन्हें यह पुस्तक समर्पण की जा रही है। क्योंकि उन्होंने अपने भाषणों से मुझे कुछ लिखने का साहस प्रदान किया है।

काशी
स्वतन्त्रता दिवस सं० २०१२

निवेदक
रामरंग शर्मा

विषय-सूची

भारतवर्ष का इतिहास

इतिहास की उपयोगिता

इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति है इति+ह+आस=इतिहास अर्थात् ऐसा कभी था। उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व इतिहास के विषय में अनेक भ्रमपूर्ण विचार धाराएँ प्रचलित थीं। विश्वविजयी नेपोलियन का कहना था कि 'इतिहास असत्य कहानियों की गुत्थी मात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं' और इसी विचारधारा के पोषण करनेवाले स्पेंसर का विचार था कि 'इतिहास मनोरंजन के अतिरिक्त और कुछ नहीं।' उपरोक्त कथन किन्हीं दो चार धार्मिक एवं राजनीतिक असत्य प्रचार करने वाले देशों के इतिहास को देखकर सत्य कहे जा सकते हैं। किन्तु पूर्णरूप से सत्य मान लेना तो अज्ञानता ही है। इतिहास का सत्य अर्थ 'इतिहास प्रवेश' के लेखक श्रीजयचन्द विद्यालंकार के शब्दों में 'इतिहास राष्ट्र का आत्मपर्यवेक्षण, आत्मानुचिन्तन, आत्मस्मरण और आत्मानुध्यान है। वह अतीत की ज्योति से अपने वर्तमान स्वरूप को पहचानने और भविष्य के मार्ग को उजियारा करने की चेष्टा है।' इसमें लेश मात्र सन्देह नहीं कि निष्पक्षभाव से लिखा इतिहास मानवविकास की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं औद्योगिक आदि घटनाओं का एक सत्य चित्र पाठकों के सामने खींचता है। इतिहास का सच्चा विद्यार्थी सदा वर्तमान को अतीत के आलोक में देखता है। इतिहास का ही चमत्कार है कि हमारे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी भी कह उठे—

थे विदित सारे तत्त्व हमको नाश और विकास के,
कोई रहस्य छिपे न थे पृथिवी तथा आकाश के।

थे जो हजारों वर्ष पहले जिस तरह हमने कहे,
विज्ञान वेत्ता अब वही सिद्धान्त निश्चित कर रहे॥

इतिहास अध्ययन करके जहाँ हम लोग ज्ञानवृद्धि एवं बौद्धिक उन्नति कर सकते हैं, वहाँ चरित्र निर्माण में भी हमें पर्याप्त सहायता मिलती है। क्योंकि इतिहास हमें सुन्दर-सुन्दर जीवन वृत्तान्तों के साथ-साथ उन लोगों के काले कारनामों का भी दिग्दर्शन कराता है, जो जयचन्द के समर्थक थे। इतिहास के अध्ययन से मानव देश भक्ति के वास्तविक रहस्य को समझ कर 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की उक्ति को चरितार्थ कर सकता है, अन्यथा नहीं। इतिहास की प्रबल शक्ति का ही फल था कि ब्रिटेन के रहने वाले जर्मनवासियों के भीषण आक्रमणों का डटकर सामना कर सके। इतिहास की पुनरावृत्ति का ही चमत्कार है कि आज हम स्वतन्त्र भारत के अन्न-जलसे अपने को पोषित कर रहे हैं।

आज हम स्वतन्त्र हैं, हमारे कन्धों पर देश के उत्थान का उत्तरदायित्व है, जिसका निर्वाह हम अतीत की घटनाओं का पर्यवेक्षण करके ही कर सकते हैं। राम की तरह आचरण करना चाहिये रावण की तरह नहीं इत्यादि बातों का ज्ञान हमें इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों पर ही मिलेगा। भूगोल, साहित्य एवं इतिहास का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक उन्नति के लिये इतिहास का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिये।

क्या भातरवर्ष एक राष्ट्र नहीं ?

भारतवर्ष का इतिहास जानने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि क्या हमारा देश एक राष्ट्र है ? राष्ट्रवाद एक ऐसी विलक्षण शक्ति है, जिसके बल से एक देश के निवासी एकता के सूत्र में ग्रथित रहते हैं और अपनी कुछ विशेषताओं के कारण वे संसार के अन्य लोगों से कुछ अलग से भी मालूम पड़ते हैं। एक राष्ट्र के लिये निम्नलिखित गुणों का होना अनिवार्य समझा जाता है--(१) वहाँ

ने अपने देश के मान को नष्ट किया। भला, मैं तुम्हारे साथ भोजन कैसे कर सकता हूँ। मैं आपके साथ भोजन तब करूँगा जब आप इन मुगलों को देश से निकाल कर स्वयं सम्राट् बनोगे। ये शिक्षाप्रद वाक्य मानसिंह के हृदय में बाण की तरह लगे और वह शीघ्र ही दिल्ली से एक बड़ी सेना के साथ लौटा। इस सेना का सेनापति स्वयं मानसिंह था और प्रमुख योद्धाओं में प्रताप का भाई शक्तिसिंह था। १५७६ ई० में हल्दीघाटी के मैदान में राणा अपने मुट्ठी भर योद्धाओं के साथ सागर की समान उमड़ती हुई मुगल सेना का सामना करने के लिये उतर पड़े। दोनों ओर से मारपीट शुरू हो गई। हिन्दी के कवि श्यामनारायणजी ने कहा भी है—

निर्बल बकरों से बाघ लड़े, भिड़ गये सिंह मृग छौनों से।
घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी, पैदल बिछ गये बिछौने से॥

सचमुच प्रताप के शूर वीरों की तलवार से मुगलों को 'छठी का दूध याद आने लगा'। युद्ध स्थल वह छोड़ भागने ही वाले थे कि तोपोंवाली सेना ने राजपूतों को परास्त होने के लिये बाध्य कर दिया। प्रताप के घोड़े चातक ने चौकड़ी भरकर मानसिंह के हाथी पर आक्रमण किया भाग्यवश मान बच गया, किन्तु महावत यमलोक सिधारा। अपनी पराजय देख अपने स्वामी भक्त सेवकों की सहायता से प्रताप निकल भागे। विजय पाने के बाद अकबर ने राणा प्रताप की बहुत खोज की, किन्तु उसके सब प्रयास असफल रहे। प्रताप को जंगलों में बड़े कष्ट उठाने पड़े, घास की रोटी खानी पड़ती थी। एक दिन स्वामी भक्त भामाशाह ने अपना सर्वस्व प्रताप के हवाले किया और प्रार्थना की कि इस धन को आप स्वतन्त्रता प्राप्ति में लगायें। इसके बाद चित्तौड़ अजमेर आदि कुछ दुर्गों को छोड़कर प्रताप ने अपना सारा राज्य मुगलों से छीन लिया। किन्तु चित्तौड़गढ़ की स्वतन्त्रता को बिना प्राप्त किये ही वीर प्रताप ने सन् १५९७ में महाप्रयाण किया।

अभ्यास

[क] अकबर की प्रारम्भिक कठिनाइयों के बारे में आप क्या जानते हैं ?

[ख] अकबर की विजयों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए उसके राज्य प्रबन्ध पर एक निबन्ध लिखो ।

[ग] अकबर ने अपने राज्य की नींव सुदृढ़ करने के लिये राजपूतों को क्या क्या सुविधायें दीं ? विशद वर्णन कीजिये ।

[घ] अकबर की धार्मिक नीति से आप कहाँ तक सहमत हैं ? युक्ति पुरस्सर उत्तर दो ।

[ङ] बैरम खाँ, टोडरमल और दीन-इ-इलाही पर संक्षिप्त नोट लिखो ।

[च] महाराणा प्रताप का चरित्र चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिये कि वे एक पक्के देशभक्त थे ।

—o—

चतुर्दश खंड

शिवाजी, औरङ्गजेब और गुरुगोविन्द सिंह

मराठा वंश और शिवाजी—मराठे महाराष्ट्र देश के निवासी हैं। यह प्रदेश पूना के आस-पास है । इस देश का बहुत सा भाग पर्वतों और जङ्गलों से भरा पड़ा है। भूमि ऊँची नीची और मार्ग अत्यन्त पेचीदा है। देश की इन प्राकृतिक अवस्थाओं ने मराठों को वीर, युद्ध-कुशल और सरल स्वभाव वाला बनाने में बड़ा भाग लिया है। इस देश के पर्वतीय दुर्ग मराठों के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुये हैं। इन्हीं दुर्गों की सहायता से मराठे अपने शत्रुओं को हराने में सफल हो सके। युद्ध के समय मराठे इन्हीं दुर्गों में छिप जाते थे और अवसर पाकर शत्रु-सेना पर छापा मारते थे ।

मराठे क़द के छोटे, सुदृढ़ और परिश्रमी थे। चिरकाल तक ये लोग दक्षिण के मुसलमान बादशाहों के आधीन और करदाता रहे। परन्तु इस काल की धार्मिक लहर ने उनके अन्दर अपने धर्म और जाति के लिये विशेष प्रेम उत्पन्न कर दिया। अन्त में शिवाजी ने इन मराठों को मुस्लिम शासन से स्वतन्त्र कराकर एक शक्तिशाली ··ति बना दिया।

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन—शिवाजी का जन्म १६२७ ई० में शोनीर के दुर्ग में हुआ। यह दुर्ग पूना से लगभग ५० मील की दूरी पर था। शिवाजी का पिता शाहजी भोंसला बीजापुर दरबार में एक उच्च सैनिक पद पर नियुक्त था और पूना का प्रदेश उसे जागीर में मिला हुआ था। इसके अतिरिक्त कर्नाटक में भी उसकी जागीर थी। शिवाजी की माँ जीजाबाई एक साध्वी, सदाचारिणी और बुद्धिमती स्त्री थी।

शिवाजी का लालन-पालन पूना में अधिकतर अपनी माँ की देख-रेख में हुआ। उस साध्वी ने प्राचीन हिन्दू वीरों की कथाएँ सुना-सुना कर शिवाजी के हृदय में धर्म और जाति की रक्षा का भाव कूट-कूट कर भर दिया। जब शिवाजी कुछ बड़ा हुआ तो दादाजी कारणदेव—जो पूना में शाहजी की जागीर का प्रबन्धक था, उसका गुरु बना। उसने शिवाजी को युद्ध विद्या और शासन प्रबन्ध में चतुर कर दिया तथा महाराष्ट्र के धार्मिक नेता गुरु रामदास और तुकाराम की शिक्षा ने उसके मन में हिन्दू धर्म के लिये असीम प्रेम उत्पन्न कर दिया। इन सब बातों का प्रभाव यह हुआ कि शिवाजी ने मराठा जाति को संगठित करने का पक्का निश्चय कर लिया।

प्रारम्भिक विजय—सन् १६४६-४८ में शिवाजी ने अपना सैनिक जीवन बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण से आरम्भ किया। १९ वर्ष की आयु में उसने रियासत बीजापुर के एक दुर्ग तोरणा पर (जो पूना

से बीस मील दक्षिण पश्चिम में है) अधिकार कर लिया और थोड़े ही समय के बाद रायगढ़ पुरन्धर आदि कुछ एक अन्य दुर्गों का स्वामी हो गया। बीजापुर के बादशाह ने क्रोध में आकर शिवाजी के पिता शाहजी को जेल में डाल दिया, परन्तु शिवाजी ने बड़ी बुद्धिमत्ता से उसे छुड़ा लिया। इसके बाद कुछ समय तक शिवाजी चुप रहा और अपनी शक्ति को दृढ़ करता रहा।

बीजापुर से युद्ध—सन् १६५९-६२ ई० में अपनी शक्ति बढ़ा लेने के बाद शिवाजी ने बीजापुर में फिर लूटमार आरम्भ की। अन्त में बीजापुर के बादशाह ने सन् १६५९ ई० में अपने सेनापति अफजल खाँ को शिवाजी को दबाने और पकड़ लाने को भेजा। दोनों ने एक दूसरे के साथ बातचीत करना स्वीकार कर लिया। परन्तु दोनों के हृदय शुद्ध न होने के कारण एक दूसरे के गले लगते ही छीना-झपटी हो गई और शिवाजी ने बिछुए से अफजल खाँ का वध करा दिया तथा उसकी सेना को भगा दिया। यह घटना प्रतापगढ़ दुर्ग के निकट हुई। इसके बाद बीजापुर के बादशाह ने और भी कई बार सेना भेजी, परन्तु कोई विशेष सफलता न हुई। अन्त में सन् १६६२ ई० में शाह बीजापुर ने शिवाजी के साथ सन्धि कर ली और उसे सारे अधिकृत प्रदेश का स्वतन्त्र स्वामी मान लिया।

मुगलों से युद्ध—सन् १६६३-८० ई० में अफजल खाँ को हराने के बाद शिवाजी का साहस बहुत बढ़ गया और उसने मुगल प्रदेश पर भी छापे मारना आरम्भ कर दिया। औरङ्गजेब ने यह देखकर अपने मामा शाइस्ता खाँ को, जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था उसके विरुद्ध भेजा। शाइस्ता खाँ ने मराठा प्रदेश पर आक्रमण किया। दो तीन वर्ष इस युद्ध में बीत गये। इसी बीच में शाइस्ता खाँ ने पूना पर अधिकार कर लिया, परन्तु एक रात शिवाजी ने चार सौ मराठा सैनिकों के साथ बरात के रूप में पूना में प्रवेश

करके मुगलों पर धावा बोल दिया। अनेकों मुगल सैनिक मारे गये, शाइस्ता खाँ स्वयं कठिनाई से प्राण बचा कर भाग निकला, परन्तु उसका पुत्र मारा गया। उससे अगले वर्ष सन् १६६४ ई० में शिवाजी ने सूरत को लूटा और बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त की।

शाइस्ता खाँ की असफलता के बाद औरङ्गजेब ने पहले राजकुमार मुअज्जम और उसके असफल रहने के बाद राजा जयसिंह को, जो उसका सब से वीर जनरल था, शिवाजी के विरुद्ध भेजा। जयसिंह ने कुछ एक स्थानों पर विजय प्राप्त की और शिवाजी को (पुरन्धर के दुर्ग में घेरकर) औरङ्गजेब की अधीनता मानने और आगरे में बादशाह के दरबार में उपस्थित होने को मना लिया। शिवाजी ने २० दुर्ग भी मुगलों को दे दिये। परन्तु जब शिवाजी औरङ्गजेब के दरबार में उपस्थित हुआ तो उसका अपमान किया और उसे बन्दी बना दिया गया। किन्तु शिवाजी बड़ी चतुराई से मिठाई के टोकरे में छिपकर भाग गया और वापिस दक्षिण आ पहुँचा। यह घटना १६६६ ई० की है। इसके बाद शिवाजी मुगलसाम्राज्य का घोर शत्रु बना।

शिवाजी का राज्याभिषेक—आगरे से लौट कर शिवाजी ने फिर कई किले जीत लिये और सन् १६७० ई० में सूरत को लूटा। सन् १६७४ ई० में रायगढ़ को राजधानी बनाकर बड़े सजधज से अपना राज्याभिषेक मनाया। इसके बाद कर्नाटक के प्रदेशों में जिंजी, बैल्लोर तथा अन्य कई दुर्ग जीते। सन् १६८० ई० में ५३ वर्ष की आयु में रायगढ़ के स्थान में उसकी मृत्यु हो गई।

शिवाजी का राज्य प्रबन्ध—शिवाजी का राज्य-प्रबन्ध अत्यन्त प्रशंसनीय था। सारा प्रदेश दो भागों में बँटा हुआ था। एक स्वराज्य जो कि सीधा शिवाजी की अधीनता में था और दूसरा मुगलाई जो आस-पास के कुछ एक जिलों पर सम्मिलित था और जो मराठों की अधीनता में न था, परन्तु जहाँ से चौथ और सरदेशमुखी नामक टैक्स उगाहे जाते थे।

(१) शासन-प्रबन्ध—शासन-प्रबन्ध शिवाजी के अपने हाथों में था, परन्तु उसने राजकीय कामों में सहायता के लिये आठ मन्त्रियों की सभा बनाई हुई थी, जिसे 'अष्ट-प्रधान' कहते थे। प्रत्येक मन्त्री के अधीन राज्य प्रबन्ध का एक एक विभाग था। प्रधान मन्त्री पेशवा कहलाता था और वह सदा ब्राह्मण हुआ करता था। शिवाजी उस सभा की सम्मति से राज्य का प्रबन्ध करता था। सारा देश सूबों और जिलों में बाँटा हुआ था। प्रत्येक जिले के प्रबन्ध के लिये राजकीय अधिकारी नियुक्त थे। गाँव के नम्बरदार को पटेल या मुखिया कहते थे। गांव का प्रबन्ध पञ्चायतें करती थीं।

(२) आर्थिक-प्रबन्ध—कृषकों से कुल उपज का ⅖ भाग लगान के रूप में वसूल किया जाता था जो नकदी या अन्न के रूप में दिया जा सकता था। उन पर किसी प्रकार की कठोरता नहीं की जाती थी, वरन् अकाल के दिनों में कृषकों को कुछ रुपया बीज आदि मोल लेने के लिये ऋण के रूप में दिया जाता था, जिसे किसान अपनी शक्ति के अनुसार वार्षिक किश्तों में चुका देते थे। भूमिकर के अतिरिक्त राजकीय आय के और भी कई साधन थे, जैसे चौथ और सरदेशमुखी। इसके अतिरिक्त लूट का धन भी राजा के पास जमा होता था।

(३) सैनिक-प्रबन्ध—शिवाजी उच्चकोटि का सैनिक अधिकारी और उसका सैनिक प्रबन्ध बहुत अच्छा था। उसके पास सशस्त्र सेना थी, जिसमें पैदल और घुड़सवार दोनों सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त उसके पास २०० लड़ाई के जहाजों का एक बेड़ा और ८० के लगभग तोपें थीं। कमांडर-इन-चीफ को सेनापति या सरनौबत कहते थे। सेना को नकद वेतन दिया जाता था। दुर्गों की विशेष रूप से रक्षा की जाती थी और उसको अच्छी दशा में रखने के लिये बहुत धन खर्च किया जाता था। शिवाजी का सैनिक नियन्त्रण भी उच्चकोटि का था। किसी योद्धा को युद्धक्षेत्र में स्त्री को साथ ले

जाने की आज्ञा न थी और लूट-मार का सारा धन राज के पास पहुँचाना पड़ता था। शिवाजी की मृत्यु के समय उसके पास कोई तीस-चालीस हजार घुड़सवार और एक लाख पैदल सेना थी।

शिवाजी का चरित्र—शिवाजी जन्म से ही नेता था। उसने अपने आपको एक वीर सेनापति और योग्य प्रबन्धकर्त्ता सिद्ध किया। उसका सबसे प्रसिद्ध कार्य यह है कि उसने मराठों में जातीयता का प्रबल भाव उत्पन्न किया, और मरहठा जाति को, जो रेत की कणों की भाँति बिखरी हुई थी, एक संयुक्त जाति बना दिया।

निजी जीवन में शिवाजी अत्यन्त सदाचारी और पवित्रात्मा व्यक्ति था। उसे अपने धर्म से अटूट प्रेम था, परन्तु वह दूसरे धर्मों से घृणा नहीं करता था। वह मन्दिरों के लिये दान दिया करता था और मुसलमान पीरों का बड़ा मान करता था। मुसलमान इतिहास लेखक खाफीखाँ लिखता है कि 'शिवाजी मसजिदों, स्त्री-जाति और कुरान शरीफ के अपमान की कभी आज्ञा न देता था। जब कभी कुरान शरीफ की कोई प्रति उसके हाथ आती तो वह बड़े आदर के साथ किसी मुसलमान को दे देता था और वह स्त्रियों का बड़ा सम्मान करता था' शिवाजी अनपढ़ था, परन्तु बड़ा समझ-दार था। उसे योग्य पुरुषों के चुनने में विशेष योग्यता थी और वह राजनीति की चालों में बड़ा चतुर था।

मराठों की युद्ध विधि—प्रारम्भ में मराठे खुले मैदान में नहीं लड़ते थे। उनकी युद्ध विधि यह थी कि जब शत्रु सेना आगे निकल जाती थी और रसद का सामान पीछे होता था तो वे दोनों के बीच रुकावट उत्पन्न कर देते थे और रसद को लूट लेते थे या शत्रु सेना के इकेले दुकेले जत्थों पर छापा मारते और अन्य सैनिकों के आने से पहले भाग जाया करते थे। उनकी सफलता का एक रहस्य यह था कि वे बड़े फुर्तीले और चुस्त थे और अत्यन्त शीघ्रता से आ जा

सकते थे। प्रत्येक सैनिक के पास भोजन सामग्री और कपड़े ,होते थे। इसलिये उन्हें भोजन सामग्री ढोने वाले विभाग की आवश्यकता नहीं थी। वे ऐसे स्थान पर छापा मारते थे, जहाँ उनके आने की सम्भावना भी न होती थी। उनकी सफलता का दूसरा रहस्य यह था कि उनके सैनिक विशेषतया मावली लोग पर्वतों पर चढ़ने उतरने में बड़े निपुण थे और तीसरा रहस्य यह था कि उनके युद्ध प्रायः अपने देशों में होते थे, जहाँ की भूमि से वे भलीभाँति परिचित थे। ऐसी युद्ध विधि को 'छापामार युद्ध' कहते हैं।

औरङ्गजेब—औरङ्गजेब मुगल वंश का अन्तिम महान सम्राट था। सिंहासनारोहण के समय उसकी आयु चालीस वर्ष की थी। उसने सन् १६५८ से सन् १७०७ ई० तक उनचास वर्ष राज्य किया। उसके शासनकाल को दो लगभग समान भागों में बाँटा जा सकता है। यह सारा समय उत्तरी भारत में बीता और सम्राट् ने दक्षिण की ओर कोई विशेष ध्यान न दिया।

सन् १६८२ ई० से १७०७ ई० यह समय दक्षिण की विजय अर्थात् बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों और मराठों के विरुद्ध युद्ध करने में बीता।

उत्तरी भारत की घटनायें

(१) आसाम पर चढ़ाई—सन् १६६३ ई० शुजा की हार के पश्चात् औरङ्गजेब ने मीर जुमला को बङ्गाल का सूबेदार नियत किया था। उसने आसाम पर चढ़ाई की, क्योंकि वहाँ के राजा ने थोड़े से मुगल प्रदेश पर अधिकार कर लिया था, परन्तु देश दुर्गम होने और मौसमी ज्वर के कारण मीर जुमला को विशेष सफलता न हुई और लौटते समय ढाका के निकट उसकी मृत्यु हो गई।

(२) अराकान की विजय—सन् १६६६ ई० मीर जुमला की मृत्यु हो जाने पर औरङ्गजेब का मामा शाइस्ताखाँ बङ्गाल का सूबेदार

नियुक्त किया गया। उसे अराकान के राजा के साथ युद्ध करना पड़ा, क्योंकि वहाँ के समुद्री लुटेरों ने लूट-मार मचा रखी थी। उसने अराकान के राजा से चटगाँव जो लुटेरों का अड्डा था जीत लिया और वहाँ से समुद्री डाकुओं का अन्त कर दिया।

(३) शिवाजी से युद्ध—सन् १६६३-१६८० ई० मराठा सरदार शिवाजी ने मुगल प्रदेश पर हाथ मारना आरम्भ कर दिया। शाइस्ता खाँ (जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था) शिवाजी के विरुद्ध भेजा गया। परन्तु शिवाजी ने पूना के स्थान पर रात के समय छापा मार कर उसे हरा दिया। औरङ्गजेब ने इसके बाद पहले राजकुमार मुअज्जम और फिर राजा जयसिंह को उसके विरुद्ध भेजा। शिवाजी ने कुछ शर्तों पर अधीनता स्वीकार कर ली और आगरे में उपस्थित हुआ। वहाँ उसे बन्दी बना लिया गया, परन्तु वह चतुराई से भागकर दक्षिण पहुंच गया। शिवाजी अन्त तक मुगलों के विरुद्ध लड़ता रहा और उसने कई दुर्ग वापिस छीन लिये। अन्त में १६८० ई० में उसका देहान्त हो गया।

(४) जाटों का विद्रोह—सन् १६६९ ई० मथुरा उसके आस-पास के प्रदेश में बहुत से जाट रहते थे, जो बड़े बलवान् और वीर लड़ाकू थे। औरङ्गजेब की धार्मिक नीति से अप्रसन्न होकर उन्होंने सन् १६६९ ई० में मथुरा में विद्रोह कर दिया। उनका नेता गोकुल जाट था। मुगल सेना ने इस विद्रोह को दबा दिया और गोकुल मारा गया, परन्तु जाट लोग औरङ्गजेब के सारे राज्यकाल में मुगलों को तंग करते रहे। औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् जाट और भी शक्तिशाली बन गये और मुगल साम्राज्य के लिये बड़े हानिकारक सिद्ध हुये।

(५) सतनामियों का विद्रोह—सन् १६७२ ई० सतनामी हिन्दू साधुओं का एक दल था। ये लोग देहली के निकट नारनौल में रहा करते थे और उनकी संख्या चार-पाँच हजार थी। वे लोग धार्मिक

विचारों के थे और थोड़ी बहुत कृषि और कुछ व्यापार भी करते थे। सन् १६७२ ई० में उन्होंने विद्रोह कर दिया। इसका कारण यह था कि एक सरकारी प्यादे ने किसी सतनामी से दुर्व्यवहार किया था। औरङ्गजेब ने उन्हें दबाने के लिये सेना भेजी। सतनामी बड़ी वीरता से लड़े और आरम्भ में उन्हें कुछ सफलता भी हुई। परन्तु अन्त में हार गये और सतनामियों का सर्वनाश कर दिया गया।

(६) राजपूतों से युद्ध—सन् १६७९-८१ ई० में मारवाड़ (जोधपुर) का महाराजा जसवन्तसिंह जो औरङ्गजेब की ओर से जमरूद का फौजदार था, १६७८ ई० में मर गया और उसकी पत्नियाँ और पुत्र मारवाड़ को चले आये। मार्ग में बादशाह ने उसके पुत्र को किसी कारण देहली में रोकना चाहा, परन्तु वीर राजपूत सरदार दुर्गादास राठौर उसे निकालकर ले गया। बादशाह की इस चेष्टा पर राजपूत बहुत भड़क उठे। उधर सन् १६७९ ई० में जजिया दोबारा लगा दिया गया, इससे वे और भी क्रुद्ध हो गये और युद्ध छिड़ गया। मारवाड़ और मेवाड़ दोनों मिल गये। औरंगजेब ने अपने पुत्र अकबर के अधीन उनके विरुद्ध सेनायें भेजीं और उधर दोनों पक्षों को बहुत हानि हुई। अकबर राजपूतों से मिल गया, परन्तु औरंगजेब ने एक पत्र लिखकर राजपूतों के हृदय में उसके सम्बन्ध में सन्देह डाल दिया और अकबर को भागना पड़ा। सन् १६८१ ई० में राजपूतों के साथ सन्धि हो गई, परन्तु इस युद्ध का साम्राज्य के पक्ष में बहुत बुरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि एक तो धन बड़ा व्यय हुआ और दूसरे राजपूत सदा के लिये मुगल साम्राज्य के शत्रु हो गये और राजपूतों और मुगलों का पारस्परिक मेल जो अकबर के समय से चला आता था और जिस पर मुगल साम्राज्य आधृत था सदा के लिये समाप्त हो गया। अब औरंगजेब को दक्षिण के युद्ध उनकी हार्दिक सहायता के बिना लड़ने पड़े।

दक्षिण की लड़ाइयाँ—राजपूतों के साथ सन्धि कर लेने के बाद औरंगजेब सन् १६८१ ई० में दक्षिण चला गया और अपनी आयु के शेष छब्बीस वर्ष वह वहीं रहा और वहीं सन् १७०७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। दक्षिण जाने में उसके दो उद्देश्य थे (१) एक तो वह बीजापुर और गोलकुण्डा के शीया राज्यों को जीतना चाहता था और (२) दूसरे वह मराठों को कुचलना चाहता था।

(१) **बीजापुर और गोलकुण्डा पर विजय**—औरंगजेब को इन दोनों राज्यों के विरुद्ध शिकायतें थीं। एक तो ये राज्य मराठों की सहायता करते थे और दूसरे इन दोनों रियासतों के बादशाह शिया थे और क्योंकि औरंगजेब दृढ़ विचारों का सुन्नी था, इसलिये वह उन्हें समाप्त कर देना चाहता था। तीसरे वह अपने साम्राज्य साम्राज्य बढ़ाना चाहता था।

हो औरंगजेब ने राजकुमार आजम को बीजापुर के विरुद्ध भेजा, परन्तु उसे कोई विशेष सफलता न हुई। इसलिए सम्राट् स्वयं वहाँ आया और लगभग एक वर्ष के घेरे के बाद सन् १६८६ ई० में बीजापुर पर विजय पाई। वहाँ के बादशाह (सिकन्दर) को पेंशन देकर राज्य से पृथक् कर दिया गया और बीजापुर मुगल राज्य में मिला लिया गया।

सन् १६८७ ई० में गोलकुण्डा पर घेरा डाला गया। वहाँ का बादशाह अबुलहसन बड़ा विलासी और कोमलकान्ति व्यक्ति था, परन्तु जब उसे लड़ना पड़ा तो उसने बड़ी वीरता से मुगलों का मुकाबिला किया और उन्हें बड़ी हानि पहुँचाई। उसके एक जनरल अब्दुर्रजाक ने वीरों की भांति दुर्ग की रक्षा की। जब औरंगजेब को वहाँ सफलता होती न दिखाई दी तो उसने दुर्ग-रक्षक को घूस देकर अपनी ओर गाँठ लिया। और उसने दुर्ग का द्वार खोल दिया। अब्दुर्रजाक वीरों की भाँति लड़ता हुआ घावों से घायल हो गया

और अन्त में मुगलों के हाथ आ गया। गोलकुण्डा पर मुगलों का अधिकार हो गया।

दक्षिण के इन राज्यों के जीते जाने से मराठों की शक्ति बहुत बढ़ गई और वे बे-रोक-टोक लूट-मार करने लगे।

(२) मराठों से युद्ध—बीजापुर और गोलकुण्डा पर विजय पाने के बाद केवल एक मराठों की शक्ति ही बाकी थी जो औरंगजेब के समस्त भारत का एक मात्र स्वामी बनने के मार्ग में बाधा थी अतः औरंगजेब ने मराठों की ओर ध्यान दिया और बीस वर्ष उनके साथ युद्ध में लगा रहा। परन्तु मराठों के अनोखे युद्ध करने के ढंग ने उसकी पेश न जाने दी।

शिवा जी उस समय मर चुका था और उसका पुत्र सम्भाजी राजा था। वह अत्यन्त विलासी और अयोग्य था। उसने कुछ काल तो मुगलों का मुकाबला किया, परन्तु सन् १६८९ ई० में सम्भाजी मुगलों के हाथों में पड़ गया और वध किया गया और उसका पुत्र साहूजी कैद हो गया। ऐसा प्रतीत होता था कि औरंगजेब अपने प्रयोजन में सफल हो गया है, परन्तु यह उसके पतन का आरम्भ था। मराठे सम्भाजी के भाई राजा राम की अधीनता में मुगलों का खूब सामना करते रहे और उसकी मृत्यु सन् (१७०० ई०) पर उसकी विधवा तारा बाई की अधीनता में युद्ध चलता रहा। वह बड़ी तीव्र बुद्धि और वीर स्त्री थी। उसने युद्ध को बड़े साहस से चालू रखा। मराठों के युद्ध का ढंग बड़ा अनोखा था। वे कभी खुले मैदान में तो लड़ते ही न थे। वे तो पर्वतों में छिपे रहते थे और अवसर पाकर शत्रु को हानि पहुँचाते, तथा भोजन-सामग्री को लूट लेते थे। इसके प्रतिकूल मुगल सेना दुर्बल और विश्राम-प्रिय हो चुकी थी। उनमें अनुशासन का चिह्न भी न था।

अन्त में औरंगजेब निराश होकर लौट पड़ा, परन्तु सन् १७०७ ई० में अहमदनगर के स्थान पर मृत्यु की गोद में सदा के लिये सो गया। मराठों के गुरीला युद्ध तथा मुगल सेना की शिथिलता ने औरंगजेब को मराठों के विरुद्ध सफल न होने दिया।

दक्षिण युद्ध के परिणाम मुगल साम्राज्य के लिये हानिकारक सिद्ध हुये। निरन्तर युद्धों से सेना दुर्बल और साम्राज्य की आर्थिक अवस्था शिथिल हो गई। उत्तरी भारत में सिक्खों और जाटों ने सिर उठाना आरम्भ कर दिया और प्रान्तीय गवर्नर केन्द्रीय शासन से विमुख हो गये जिससे मुगल साम्राज्य का पतन निकट आ गया।

औरङ्गजेब का चरित्र—औरंगजेब मुगल वंश का एक अति प्रसिद्ध शासक था। उसके चरित्र में अधिक स्पष्ट बात यह है कि वह पक्का सुन्नी मुसलमान और शरीयत का पूर्णतया पालक था। उसे समस्त कुरान शरीफ कण्ठस्थ था। उसका जीवन सरलता का ही उत्कृष्ट आदर्श था। वह निजी आवश्यकता के लिये कोष से एक पाई का व्यय भी पाप समझता था और टोपियाँ बनाकर तथा कुरान शरीफ की प्रतियाँ लिखकर निर्वाह करता था। उसे गाने, बजाने और भड़कीले कपड़ों से घृणा थी और उसने देश में राग रंग बन्द कर रखा था। वह एक वीर सैनिक तथा अनुभवी सेनापति था और घोर युद्ध में भी साहस न छोड़ता था। इसके अतिरिक्त वह एक परिश्रमी राजा था और राज्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्य की देखभाल स्वयं करता था। वह राजनीति में भी बड़ा चतुर था। वह इरादे का बड़ा पक्का था और अपने मन का भेद किसी पर प्रकट न होने देता था। उसे विद्या से भी बड़ा प्रेम था और वह आयु पर्यन्त अध्ययन करता रहा।

परन्तु वह बहुत ही अविश्वासी स्वभाव का था, यहाँ तक कि वह अपने पुत्रों पर भी विश्वास न करता था। इसके अतिरिक्त उसने अपनी धर्मान्धता से हिन्दुओं और विशेषतया राजपूतों को अपना शत्रु बना लिया था।

धार्मिक कट्टरता—औरङ्गजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था और इस्लाम के प्रति उसे अतीव श्रद्धा थी। वह अपना जीवन कुरान शरीफ के आदेशों के अनुसार बिताता था। यही कारण था कि अपनी हिन्दू प्रजा के साथ उसका व्यवहार अच्छा न था। कई स्थानों पर हिन्दू मन्दिर गिरा दिये गये, हिन्दुओं के लिये सरकारी नौकरी के द्वार बन्द कर दिये गये और उनको पालकी में या अरबी घोड़े पर सवार होने का निषेध कर दिया गया। सन् १६७६ ई० में जजिया लगा दिया गया जो कि सन् १५६४ ई० में अकबर ने हटा दिया था। औरङ्गजेब शिया मत का भी विरोधी था। दक्षिण के मुस्लिम राज्यों को समाप्त करने का एक मुख्य कारण यह था कि उन राज्यों के बादशाह शिया थे और उनके मंत्री हिन्दू थे। औरङ्गजेब की धार्मिक नीति साम्राज्य के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुई।

औरङ्गजेब की असफलता के कारण—बाह्य रूप में औरङ्गजेब एक अत्यन्त सफल शासक था। उत्तरी भारत में उसे प्रत्येक युद्ध में सफलता हुई। दक्षिण में उसने बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों को जीता और यदि वह मराठों को हरा न सका, तो मराठे भी उसके विरुद्ध कोई पर्याप्त सफलता न पा सके। उसका साम्राज्य भारत में एक कोने से दूसरे कोने तक फैला हुआ था और इतना विस्तृत था कि उससे पहले किसी मुसलमान बादशाह का साम्राज्य इतना बड़ा न था और भारत में कोई ऐसी शक्ति शेष न थी, जो मुगल साम्राज्य का सामना कर सकती। परन्तु वास्तव में यह बात है कि औरङ्गजेब सम्राट के रूप से असफल सिद्ध हुआ और उसके शासनकाल में ही मुगल साम्राज्य के पतन का आरम्भ हो गया था। उसकी असफलता के कारण नीचे लिखे हैं:—

(१) धार्मिक नीति—औरङ्गजेब पक्का सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को नौकरियों से पृथक् कर दिया, उनके मन्दिर गिरवा

लिये और उन पर जजिया लगा दिया। परिणाम यह हुआ कि औरङ्गजेब के शत्रुओं अर्थात् मराठों और सिक्खों के साथ उसकी हिन्दू प्रजा की सहानुभूति हो गई। इसके अतिरिक्त वीर राजपूत जो अकबर के समय से लेकर मुगल साम्राज्य के सच्चे सहायक और हितचिन्तक चले आते थे, मुगल साम्राज्य के घोर शत्रु बन गये और औरङ्गजेब को दक्षिण के युद्ध उनकी हार्दिक सहायता के बिना लड़ने पड़े।

(२) बीजापुर और गोलकुण्डा की विजय—औरङ्गजेब ने इन राज्यों को जीत कर एक भयानक राजनैतिक भूल की; क्योंकि इससे मराठों की शक्ति बढ़ गई। इन राज्यों के सैनिक मराठी सेना में आ भरती हुए। इसके अतिरिक्त इन राज्यों को जीत लेने से मुगल साम्राज्य इतना विशाल हो गया कि उसको वश में रखना असम्भव हो गया।

(३) दक्षिण की लड़ाइयाँ—दक्षिण में निरन्तर २६ वर्ष की लड़ाइयों ने न केवल कोष ही रिक्त कर दिया, परन्तु राज्य-प्रबन्ध को भी शिथिल कर दिया। इसी समय में सिक्खों को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिल गया। जाटों ने विद्रोह कर दिये और जमीदारों ने मुगल वायसरायों का प्रतिरोध करना आरम्भ कर दिया।

(४) अयोग्य उत्तराधिकारी—औरंगजेब का स्वभाव अत्यन्त संदेहशील था। उसके इस स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि उसके लड़कों को किसी प्रकार की शासन-शिक्षा न मिल सकी। इसलिए उसके उत्तराधिकारी आलसी, शक्तिहीन, दुराचारी तथा निकम्मे सिद्ध हुए और वे अपने मन्त्रियों के हाथों में कठपुतली बने रहे। इससे केन्द्रीय शासन का अन्त हो गया।

(५) विदेशी राज्य—भारतवर्ष की अधिकांश जनसंख्या के लिये मुगल राज्य एक विदेशी राज्य था। अतः वह त्याग और देश-

भक्ति जो किसी साम्राज्य की स्थिरता के लिये आवश्यक है, लोगों के हृदय में न थी। लोगों को राज्य के साथ कोई विशेष प्रेम न था।

(६) निरंकुश राज्य—मुगल साम्राज्य निरंकुश राज्य था और इस प्रकार का राज्य केवल उस समय तक चल सकता है जब तक बादशाह दूरदर्शी और शक्तिशाली हों। जब राज्य किसी निकम्मे बादशाह के हाथ आ जाता है तो निश्चय ही उसका पतन हो जाता है। औरंगजेब के पश्चात् सब मुगल बादशाह निकम्मे और शक्तिहीन थे और यह बात पतन का एक बड़ा कारण सिद्ध हुई।

(७) उत्तराधिकारी नियुक्त करने के नियम का न होना—मुगलों में उत्तराधिकारी नियुक्त करने का कोई विशेष नियम न था, इसलिये जब कभी कोई बादशाह मरता, तो उसके लड़कों में राज्याधिकार पाने के लिये युद्ध छिड़ जाता था। जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब आदि की मृत्यु के बाद राजगद्दी के लिये गृहयुद्ध हुए, जो साम्राज्य के लिये अतीव हानिकार सिद्ध हुए। ये युद्ध औरंगजेब की मृत्यु के ३० वर्ष पश्चात् तक के समय में तो बहुत अधिक हो गये। इन युद्धों में कई राजकुमार, मुगल सरदार और सुशिक्षित सैनिक मारे गये।

(८) अमीरों की अयोग्यता—इसमें कोई संदेह नहीं कि अब्दुररहीम, आसफ खाँ, महाबत खाँ, मीरजुमला इत्यादि बड़े उच्च कोटि के अमीर थे। वे मुगल साम्राज्य के स्तम्भ थे और उन्होंने मुगल राज्य को सुदृढ़ करने में बड़ा भाग लिया था, परन्तु उनके वंशज अर्थात् उनके पुत्र पौत्र बड़े विलासप्रिय और अयोग्य सिद्ध हुए। उनमें अपने पूर्वजों की योग्यता लेश-मात्र भी न थी। उच्चकोटि के अमीरों का अभाव भी इस साम्राज्य के पतन का एक भारी कारण था।

(९) मुगल सेना की निर्बलता—असीम धन और विलासिता के कारण मुगल सेना भी विश्रामप्रिय और निर्बल हो गई थी।

अफसर पालकियों में बैठकर युद्ध-क्षेत्र में जाते थे। सैनिक अपने साथ अपनी स्त्रियों को भी ले जाते थे। बाबर के समय जैसा साहस और वीरता उनमें नाममात्र भी न थी। मुगल सेना की निर्बलता शाहजहाँ के समय से ही प्रकाशित हो गई थी, जब कि वह कई बार प्रयत्न करने पर भी कन्धार का नगर ईरानियों से वापस न ले सकी। औरङ्गजेब के राज्यकाल में तो यह निर्बलता और भी स्पष्ट हो गई थी।

(१०) प्रान्तों की स्वतन्त्रता—औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् कोई योग्य शासक न रहा, तो सूबेदार अपने अपने प्रान्तों में स्वतंत्र हो गये। बंगाल में अलीवर्दी खाँ, अवध में सआदतअली खाँ, दक्षिण में निजामुलमुल्क आसफजाह और रुहेलखण्ड में रुहीले मुहम्मदशाह रंगीले के समय स्वतन्त्र बन बैठे।

(११) विदेशी आक्रमण—मुगल साम्राज्य की इस दुर्बलता से लाभ उठाकर नादिरशाह और अहमदशाह ने भारत पर आक्रमण किये और इस साम्राज्य की रही-सही शक्ति को भी मिटा दिया।

(१२) साम्राज्य विस्तार—औरङ्गजेब के समय में मुगल साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया था और उस काल में जब कि आने जाने के साधन इतने अच्छे न थे और समाचार शीघ्र भेजने का उचित प्रबन्ध नहीं हो सकता था, इतने बड़े साम्राज्य को अपने अधीन रखना अत्यन्त कठिन था। इसलिये साम्राज्य का विस्तार भी उसके पतन का एक कारण सिद्ध हुआ।

(१३) नई शक्तियाँ—मराठे और सिक्ख बड़ी शीघ्रता से अपनी शक्ति को बढ़ा रहे थे। मराठे दक्षिण से उत्तरी भारत तक छा गये थे और सिक्खों ने पंजाब पर अधिकार जमा लिया था। इसके अतिरिक्त यूरोपीय जातियों ने भी भारत में अपने पैर जमा लिये थे। इससे मुगल साम्राज्य का सर्वथा अन्त हो गया।

(१४) अच्छे यौद्धिक बेड़े का न होना—कई ऐतिहासिकों का विचार है कि अच्छे यौद्धिक बेड़े का न होना भी साम्राज्य के पतन का एक कारण था। उनका मत है कि यदि जहाजी बेड़ा साम्राज्य के पतन को बचा नहीं सकता था, तथापि योरप के आक्रमण-कर्त्ताओं का मुक़ाबला करके उस पतन को कुछ समय के लिये रोक सकता था।

गुरुगोविन्द सिंह—सन् १६६६-१७०८ ई० में सिक्खों के दसवें और अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह जी थे। उन्होंने तो इस सम्प्रदाय की काया पलट दी। वह सन् १६६६ ई० में पटना में उत्पन्न हुये और अपने पिता गुरु तेग बहादुर जी के बलिदान के बाद छोटी-सी आयु में ही गद्दी पर बैठे। इसके बाद बीस वर्ष तक वह पहाड़ों में रह कर अपनी शक्ति को दृढ़ करते रहे। गुरु गोविन्द सिंह जी ने सिक्खों को नये सिरे से संगठित किया। सिक्खों के लिये आवश्यक हुआ कि वे अमृतपान करने की रीति का पालन करें—केश, कड़ा, कच्छा, कृपाण और कंघा अपने पास रखें। अब वे सिक्ख के स्थान पर सिंह कहलाने लगे और इस दल का नाम खालसा रखा गया। इस प्रकार गुरु गोविन्द सिंह जी ने सिखों के धार्मिक दल को योद्धा दल बना दिया। गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन का अधिक भाग मुगलों के साथ युद्ध लड़ने में बीता और उन युद्धों में उनके चारों पुत्र और कई आज्ञाकारी सिक्ख काम आये। परन्तु गुरुजी ने अधीनता स्वीकार न की। अन्त में औरङ्गजेब ने उन्हें दक्षिण बुला भेजा, किन्तु उनके वहाँ पहुँचने से पहले औरङ्गजेब की मृत्यु हो चुकी थी। सन् १७०८ई० में अबचल नगर (नान्देर के स्थान) पर जो दक्षिण में है गुरु गोविन्द सिंह जी की मृत्यु हो गई। उस स्थान को सिक्ख श्री हुजूर साहिब कहते हैं। अपनी मृत्यु से पूर्व उन्होंने एक व्यक्ति बन्दा बैरागी को सिक्खों का नेता नियत किया।

बन्दा बैरागी और गुरु गोविन्द सिंहजी—बन्दा बैरागी का, जिसे बन्दा बहादुर भी कहते हैं, मूल नाम लक्ष्मणदेव था। वह

जाति से राजपूत और पुँछ में स्थित राजौडी नामक स्थान का निवासी था। युवावस्था में ही वह बैरागी हो गया था और गोदावरी नदी के तीर पर रहा करता था। गुरु गोविन्द सिंह साहिब जब दक्षिण गये, तो उनकी उससे भेंट हुई। उन्होंने उसे फिर से क्षात्र धर्म अपनाने का उपदेश दिया और उसे सिक्खों का सैनिक नेता नियुक्त किया। बन्दा बैरागी पंजाब में चला आया और सिक्खों की एक विशाल संख्या एकत्र करके मुगल साम्राज्य पर छापे मारने लगा। सरहिन्द (यमुना और सतलज के मध्यवर्ती) प्रदेश को उसने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और वहाँ का सूबेदार वजीर खाँ मारा गया। इसके बाद उसने सिक्ख मत में कुछ परिवर्तन करना चाहा, जिस कारण बहुत से सिक्ख पृथक हो गये। अन्त में सन् १७१६ ई० में फरुख सय्यर के शासनकाल में बन्दा अपने आठ सौ साथियों सहित पकड़ा गया और उसको तथा उसके साथियों को घोर कष्ट देकर वध कर दिया गया।

गुरु गोविन्द और बन्दा बैरागी के बाद—बन्दा के बध के बाद सिक्खों का कोई नेता न रहा और पंजाब के मुसलमान सूबेदारों ने उनके विरुद्ध कठोरता की नीति धारण की। इसलिये कुछ समय के लिये उन्हें पर्वतों और जंगलों का आश्रय लेना पड़ा, परन्तु उस समय भी सिक्ख सुअवसर की प्रतीक्षा में थे। इसलिये जब नादिर-शाह और विशेषतः अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के कारण पंजाब में चारों ओर हलचल मच गई, तो सिक्खों ने उस अवसर से लाभ उठाया और वे पर्वतीय और जंगली प्रदेशों से निकल कर मैदानी प्रदेशों में आ पहुँचे और छोटे छोटे जत्थे बनाकर शासकों से लड़ाइयाँ लड़ने लगे। उन जत्थों को मिसलें कहते थे और प्रत्येक जत्थे का एक सरदार या जत्थेदार होता था। उन मिसलों ने पंजाब के बहुत से प्रदेश पर अधिकार कर लिया और कई छोटी छोटी स्वाधीन रियासतें स्थापित कर लीं। ये मिसलें कभी कभी आपस में लड़ती रहती थीं, परन्तु मुसलमानों के मुकाबले में इकट्ठी हो जाती थीं। इन मिसलों

में से एक का सरदार चढ़तसिंह था। उसके पोते रणजीत सिंह ने शेष मिसलों पर विजय पाकर पंजाब में सिक्ख राज्य स्थापित किया।

अभ्यास

[क] शिवाजी के बाल्यकाल का सामान्य परिचय देकर उनके राज्य प्रबन्ध पर एक निबन्ध लिखो।

[ख] शिवाजी का चरित्र चित्रण करते हुए मराठों की युद्ध विधि पर प्रकाश डालिये।

[ग] औरंगजेब की उत्तरी और दक्षिणी विजयों से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में उत्तर दो।

[घ] औरंगजेब के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उसकी असफलताओं के कारण समझाओ।

[ङ] गुरु गोविन्द सिंह, और बन्दावीर बैरागी पर संक्षिप्त नोट लिखो।

—०—

पञ्चदश खण्ड

विदेशियों का भारत में आना

भारत का व्यापारिक सम्बन्ध योरोप वालों से बहुत पुराना है। पहले यह व्यापार रक्तसागर के मार्ग से होता था। किन्तु १५वीं शताब्दी में इस मार्ग पर तुर्कों का अधिकार हो गया। जिसका फल यह हुआ कि कुछ दिनों के लिये योरोप की रमणियाँ हमारे देश की निर्मित वस्तुओं के लिये छटपटाने लगीं। अपनी आर्थिक स्थिति इस प्रकार डावाँडोल होते देख योरोप वासियों को यह धुन लगी कि शीघ्रातिशीघ्र कोई दूसरा मार्ग ढूँढा जाय, जो तुर्कों के आधिपत्य में न हो। इस मार्ग के अन्वेषण में सर्व प्रथम कोलम्बस १४९२ ई० में घर से निकला, किन्तु इधर-उधर के चक्कर

काटने के बाद उसने एक नई दुनियाँ का पता लगाया, जिसे आज हम अमेरिका के नाम से जानते हैं। अमेरिका की, धनसम्पत्ति का दिग्दर्शन करते ही कोलम्बस ने भारत की कल्पना की जो वस्तुतः असत्य थी। इसके बाद १४९८ में पुर्तगाल निवासी वास्को-डि-गामा ने अपने साथियों के साथ दक्षिणी अफ्रिका का भ्रमण करने के बाद आशा अन्तरीप का चक्कर काटकर कालीकट बन्दरगाह पर पहुँचने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। यहाँ पहुँचने पर वास्को-डि-गामा ने कालीकट के हिन्दूराज जमोरिन से व्यापार करने की अनुमति ले ली। इस तरह सर्वप्रथम पुर्तगाली और इसके बाद देखादेखी डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी भारत के साथ व्यापार करने को व्याकुल हो उठे। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय यह देश सचमुच 'सोने की चिड़िया' था, जिसके पंख नोचने के लिये ही उपरोक्त देश झपटे थे। अस्तु, वे लोग पूर्ण सफल हुए और हमारी यह सोने की चिड़िया आज लुञ्ज-पुञ्ज होकर किसी तरह जी रही है।

भारत और पुर्तगाली साम्राज्य लिप्सा—आशा अन्तरीप का मार्ग, पुर्तगालियों ने ही ढूँढ़ा था। इसलिये युरोपीय जातियों में सर्व प्रथम पुर्तगाली ही हमारे सम्पर्क में आये। वास्को-डि-गामा अपने व्यापार का यहाँ कार्यक्षेत्र बनाकर कुछ ही दिनों में अपने देश को लौट गया। इसके बाद पुर्तगालियों का ताँता लग गया और उन्होंने भारत में कालीकट, कोचीन और कनानूर में अपनी कोठियाँ स्थापित कीं। इसके बाद फिर वास्को-डि-गामा १५०२ में सजधज के साथ आया और उस राजा जमोरिन पर आक्रमण कर दिया, जिसने उसे भारत में पैर टिकने का स्थान दिया था। योरोप में उस समय एक प्रथा थी कि जो जाति किसी नये स्थान का पता लगायेगी वहाँ उसका अधिकार समझा जायगा। पुर्तगाली सम्राट् ने भी भारत के साथ वैसा ही बर्ताव किया, जिसके लिये

उसे पोप से आज्ञापत्र भी मिल गया। पोप की आज्ञा पाते ही पुर्तगालियों का प्रथम वाइसराय फ्रांसिस्को आल्मीडा भारत आया। वह १५०५ से १५०९ तक भारत में रहा। उसकी यह नीति थी कि भारत के समुद्री तटों पर अधिकार जमाकर व्यापारिक शक्ति हाथ में लेना। यही कारण था कि उसने भारत के चिर परिचित अरब व्यापारियों पर आक्रमण कर उन्हें बुरी तरह पराजित किया और भारत का सारा समुद्री व्यापार अपने अधीन कर लिया। फ्रांसिस्को आल्मीडा के बाद अल्बुकर्क वाइसराय होकर भारत में आया। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने पूर्ववर्ती कर्मचारियों से कहीं अच्छा था। इसने आते ही अपने साम्राज्य की नींव सुदृढ़ करने के विचार से पुर्तगाली और भारतीय लोगों में विवाह आदि सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की और उसे सफलता भी मिली। इसके बाद उसने अपनी कूटनीति से 'गोवा' पर विजय पाई और उसे राजधानी बनाकर शासन करने लगा। शिक्षा प्रसार के लिये उसने प्रशंसनीय कार्य किये। १५१५ ई० में उसकी गोवा में ही मृत्यु हुई और वहीं दफना दिया गया। इसके बाद पुर्तगालियों की साम्राज्य लिप्सा निरन्तर बढ़ती गई और अन्त में भारत के कई भागों पर उनका राज्य जम गया। परन्तु १०० वर्ष तक भी पुर्तगाली अपना राज्य पूरे भारत पर न कर पाये थे कि उनका पतन आरम्भ हो गया। अब उनके पास केवल गोवा, दामन, ड्यू के प्रदेश हैं, जिनकी जन संख्या लगभग ६ लाख है। अंग्रेज और फ्रांसीसियों को देश से निकालने के बाद आजकल भारतीयों ने उधर ध्यान दिया है, आशा की जाती है कि शीघ्र इन राक्षसों का हनन कर हम विजय-दशमी बनायेंगे।

पुर्तगालियों के पतन के कारण—पुर्तगालियों का भारत में सर्व प्रथम आगमन हुआ और वे शासन जमाने में सफल भी हुए। किन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि उनका साम्राज्य

इतना जल्दी कैसे केवल गोवा, दामन, ड्यू की चार दिवारी में ही सीमित हो गया। पुर्तगाली इतिहास का अध्ययन करने पर उनके साम्राज्य पतन के कारण ये दृष्टिगोचर होते हैं—

१—अत्याचार—पुर्तगाली अफसर बड़े अत्याचारी थे। आज के सालाजार की तरह प्रजा को दुःख देना ही उनका प्रधान कार्य था, २—अयोग्य उत्तराधिकारी—अल्बुकर्क के उत्तराधिकारी अयोग्य थे, जो शासन की 'ए०बी०सी०' भी न जानते थे, ३—धर्मान्धता—अपने धर्म के प्रचार के लिये उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों के साथ कठोर व्यवहार किया, ४—सामुद्रिक डाकू—ये लोक डाका डालने में पर्याप्त सिद्धहस्त होते हैं, अतः उन्होंने उस समय भारतीय जहाजों को भी लूटा, ५—अन्तर्विवाह—भारतीयों के साथ विवाह सम्बन्ध बनाकर उनका उद्देश्य एक ऐसी जाति बनाने का था, जो खाये तो भारत का और गीत गाये पुर्तगाल का, जिसमें उन्हें सफलता नहीं मिली, ६—विरोधियों का आना—इन पुर्तगालियों की अपेक्षा अधिक सभ्य डच और अंग्रेज भारत में आ गये थे, जिनकी ओर झुकना भारतीयों का स्वभाविक था। ये ही कारण थे कि पुर्तगाल भारत में सफल नहीं हुए। आज भी पुर्तगालियों का वही रवैया है। उपरोक्त बातों से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि अब पुर्तगाली इस संसार में शासन करना तो दूर रहा, रहना भी नहीं चाहते।

डच—हालैण्ड देश के निवासी डच कहलाते हैं। भारत में पुर्तगालियों को मालोमाल होते देख इन बेचारों से भी न रहा गया और ये १६०२ में भारत में आ पहुँचे। भारतीय नरेशों ने इनके साथ भी सद् व्यवहार किया, और उन्हें स्वेच्छा पूर्वक व्यापारिक कोठियाँ खोलने दीं। चिन्सुरा, गोपट्टम, पुलीकट, सूरत, अहमदाबाद और पटना में उन्होंने अपने व्यापारिक मण्डल बनाये और भारत की धन राशि से हालैण्ड के कच्चे मकानों पर सोने और चान्दी की छत्तें डालने लगे। सामुद्रिक यात्रा में डच लोग बड़े निपुण होते हैं।

यही कारण था कि उन लोगों ने पुर्तगालियों को भारतीय समुद्रों से निकाल बाहर फेंका। इसके बाद डचों ने भी अँगुली पकड़ कर हाथ पकड़ने वाली उक्ति को चरितार्थ करने के लिये भारत में शासन जमाने की कोशिश की। किन्तु अंग्रेजों के सामने दाल न गलते देख शान्त हो गये और गरम मसाले के द्वीपों पर ही अधिकार करके रह गये। क्योंकि उस समय गर्म मसालों की बड़ी माँग थी। जावा सुमात्रा आदि द्वीपों पर शताब्दियों तक डचों ने शासन किया। किन्तु, अब ये द्वीप स्वतन्त्र हैं।

अंग्रेज—वैसे तो कुछ वर्ष पूर्व ही अंग्रेज भारत में आने जाने लगे थे, किन्तु उनका सम्बन्ध केवल निजी यात्रा से था। इधर १५८८ई० में जैसे इंगलैण्ड ने स्पेन के व्यापारिक बेड़े को नष्ट-भ्रष्ट किया कि उनका साहस बढ़ गया। क्योंकि सामुद्रिक शक्ति अब उनके हाथ में आ गयी थी। इसलिये १६०० ई० में इंगलैण्ड के कुछ व्यापारियों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की, जिसकी आज्ञा रानी एलिजावेथ ने तुरत दे दी। इसके बाद यह कम्पनी भारत में आयी। किन्तु, आयी अपने हाथों में भारतीयों की परतन्त्रता का पाश लेकर। पहले तो इंगलैण्ड की इस कम्पनी ने गर्म मसाले वाले द्वीपों पर ही अधिकार करना चाहा, किन्तु डचों ने अंग्रेजों की एक न चलने दी। इस पराजय के बाद इस कम्पनी का यहाँ की पुर्तगाली व्यापार मण्डली ने 'श्वानवत् घुर्घुरायते' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए उत्तर दिया। यही कारण था कि रानी एलिजावेथ के प्रार्थना पत्र के साथ आये हुए अंग्रेज व्यापारियों को इन पुर्तगालियों ने अकबर के राज्य दरबार में टिकने नहीं दिया। इसके बाद १६०८ ई० में जहांगीर के दरबार में कप्तान हाकिन्स आया और उसे भारत में व्यापारिक कोठियाँ खोलने की आज्ञा भी मिली, किन्तु पुर्तगालियों के विरोध के बाद वह आज्ञा शीघ्र ही निषेध में बदल गयी। इसके बाद अंग्रेज अच्छी तरह समझ गये कि पहले इन सफेद चमड़ी वाले

अपने भाइयों को सीधा करना चाहिये। इसीलिये १६१२ ई० में अंग्रेजों ने सूरत के निकट सवाली स्थान के जल युद्ध में पुर्तगालियों को सबक सिखाया और उनकी शक्ति तहस-नहस कर दी। इसके बाद जहाँगीर के दरबार में अंग्रेजों को स्थान मिला। यही कारण था १६१५ ई० में सरटामसरो को इंगलैण्ड के सम्राट ने राजदूत बनाकर जहाँगीर के दरबार में भेजा और उसने कम्पनी को बहुत अधिकार दिलाये। इसके बाद १६४० में कम्पनी ने थोड़ी सी भूमि खरीद कर मद्रास में सेन्टजार्ज नामक दुर्ग की स्थापना की। १६५० में डाक्टर बाटन ने अपनी चतुरता से बंगाल के सूबेदार से लिखा लिया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी बिना कर दिये बंगाल में व्यापार कर सकती है। इसका परिणाम यह हुआ कि हुगली के किनारे कम्पनी की व्यापारिक कोठियाँ ही कोठियाँ नजर आने लगीं। १६६१ ई० में तो राजा चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को अपनी शासनप्रणाली का भी पूरा अधिकार दे दिया। अब कम्पनी अपना सिक्का और अपनी फौज रख सकती थी। १६६४ में चार्ल्स द्वितीय ने अपना किला जो उसे अपने ससुर पुर्तगाल के राजा की ओर से दिया गया था, उसे उसने बम्बई में किराये पर कम्पनी को दे दिया। धीरे-धीरे कम्पनी की शक्ति खूब बढ़ी और उसने हुगली नदी के किनारे कलकत्ता शहर की नींव डाली और वहाँ फोर्ट विलियम नामक राजा की स्मृति में किला बनवाया। इस प्रकार कम्पनी की उन्नति होते देख इंगलैण्ड से भारत का शोषण करने के लिये एक दूसरी कम्पनी भी आयी। कुछ दिन तक दोनों कम्पनियों में विरोध चला, किन्तु १७०८ ई० में ये आपस में मिल गयीं। इसके बाद इस संयुक्त कम्पनी ने भारत पर अधिकार कर लिया। इस कम्पनी ने इतने अत्याचार किये जिन्हें याद कर आज भी एक सच्चा मानव कम्पनी को धिक्कारे बिना नहीं रह सकता। अन्त में इन अत्याचारों का अन्त करने के लिये भारतीयों ने पहला स्वतन्त्रता युद्ध १८५७ ई० में छेड़ा, जिससे कम्पनी का अस्तित्व खतम हो

गया। उसके बाद ब्रिटेन की पार्लियामेन्ट का शासन रहा, जिसको हटाने के लिये अनेक भारतीयों को बलिदान होना पड़ा। अन्त में १४ अगस्त १९४७ ई० में महात्मा गान्धी के नेतृत्व में हमने अंग्रेजों की गली-सड़ी सरकार को सात समुद्र पार फेंक दिया।

फ्रांसीसी—फ्रांसीसी भी अन्य योरोपीय जातियों की तरह भारत में व्यापार करने की दृष्टि से आये। इसीलिये अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरह फ्रांसवासियों ने भी अपनी एक व्यापारिक कम्पनी स्थापित की। सन् १६६४ ई० में फ्रेञ्च ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना होते ही मसोलीपटम, सूरत, पाण्डिचेरी और चन्द्रनगर में फ्रेंच व्यापारिक कोठियाँ दृष्टिगोचर होने लगीं। धीरे-धीरे व्यापारिक उन्नति के बाद फ्रांसीसियों के हृदय में भारत पर शासन करने की लालसा हो गयी। क्योंकि भारत पर विजय पाना, फ्रांस के राजा की शक्ति को सुदृढ़ करना एवं ईसाई धर्म का प्रचार करना फ्रांसियों के मुख्य उद्देश्य हो गये, जिसके लिये उन्हें स्वतन्त्र वातावरण की आवश्यकता थी। इसी उद्देश्य से उन्होंने १६७५ ई० में पाण्डिचेरी को अपनी राजधानी घोषित किया। इसके बाद कई स्थानों पर उनका अधिकार हो गया। इस प्रकार भारत में शासन जमाने की मनोवृत्ति देखकर अंग्रेज लोग फ्रांसीसी कम्पनी से चिढ़ गये। फलस्वरूप दोनों कम्पनियों में संघर्ष होने लगा। किन्तु, फ्रेंच कम्पनी अंग्रेजी कम्पनी के समान न तो धनिक थी और न स्वतन्त्र। फ्रेंच कम्पनी फ्रेंच सरकार की थी इसलिये इस कम्पनी के अधिकारी राजा की आज्ञा के बिना कुछ नहीं कर पाते थे, जब कि अंग्रेज कम्पनी पूर्ण स्वतन्त्र थी। यही कारण था कि आगे चलकर फ्रेंच कम्पनी ने अंग्रेज कम्पनी के आगे दमतोड़ दिया। १७३५ ई० से १७४१ ई० तक ड्यूमा फ्रांस के विजित स्थानों का गवर्नर रहा और उसने फ्रांसीसी शक्ति की उन्नति करने के प्रशंसनीय कार्य भी किये। इसके बाद डुप्ले फ्रेंच कम्पनी की ओर से भारत विजित स्थानों का शासक

नियुक्त किया गया। निःसन्देह वह बड़ा चतुर, दूरदर्शी, विचार शील एवं महत्त्वाकांक्षी था। जिस समय डुप्ले यहाँ गवर्नर होकर आया उस समय योरोप में प्रायः फ्रांस और इंगलैण्ड वालों के सम्बन्ध अच्छे न थे। छोटी-छोटी बात पर युद्ध छिड़ जाता था, जिसका असर भारत की कम्पनियों पर भी पड़ता था। डुप्ले के समय अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में परस्पर द्वेष के कारण युद्ध छिड़ गया, जिसमें अन्ततोगत्वा अंग्रेजों की विजय हुई। फ्रेंच कम्पनी के हारने के अनेक कारण थे।

(१) फ्रेंच सरकार ने डुप्ले की ठीक समय पर सहायता नहीं की, (२) फ्रेंच कम्पनी के कर्मचारी आपस में द्वेष करते थे और बड़े लालची हो गये थे, (३) डुप्ले को अब अभिमान हो गया था। (४) डुप्ले को अपनी विजय पर विश्वास था, इसीलिये उसने कभी इधर उधर से सहायता नहीं माँगी, (५) अंग्रेजों की जलशक्ति का फ्रांसीसी जलशक्ति की अपेक्षा अधिक होना।

यह सब होते हुए भी मानना पड़ता है कि डुप्ले एक बड़ा देशभक्त तीव्रबुद्धि, दृढ़ विचार वाला व्यक्ति था। उसने अपने देश और जाति की रक्षा एवं गौरव के लिये, अपना तन-मन-धन स्वाहा कर दिया। सचमुच यदि परिस्थितियाँ उसके अनुकूल रहतीं तो वह न हारता और न भारत में अंग्रेजी शासन को जमने देता। फ्रांसीसी शक्ति के इस प्रकार ह्रास होने पर भी माहे, कारीकल, पांडीचेरी, यनाओ और चन्द्रनगर पर फ्रांस की शासन व्यवस्था १९५४ ई० तक चलती रही। किन्तु, आज वहाँ फ्रांसीसी पताका के स्थान पर भारतीय तिरंगा फहरा रहा है।

भारतीयों से विदेशियों का संघर्ष

सिराजुद्दौला और प्लासी का युद्ध—औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसका कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं हुआ। फलतः बंगाल के सूबेदार मुर्शिदकुली खाँ ने मुगल साम्राज्य से पृथक् होकर अपनी राजधानी

मुर्शिदाबाद घोषित कर दी। मुर्शिदकुली खाँ की मृत्यु के बाद उसके वंशजों को पराजित कर अलीवर्दी खाँ ने १७४१ ई० में बंगाल का राज्यसिंहासन सम्भाला। यह बड़ा निपुण और कूटनीतिज्ञ था। इसके समय में जब कभी अंग्रेज किले आदि बनवाने की प्रार्थना करते तो यह तुरत उन्हें यह कहकर समझा देता था कि आप व्यापारी हैं, आप लोगों को किलों की क्या आवश्यकता है ? इसकी मृत्यु के बाद उसका दोहता सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना। यह एक अनुभव रहित नव युवक था। यही कारण था कि राज्य-गद्दी पर बैठते ही उसकी अंग्रेजों से खटपट शुरू हो गयी, जिसका आगे चलकर भयंकर परिणाम हुआ। सिराजुद्दौला और अंग्रेजों में प्लासी के मैदान में युद्ध हुआ, जिसके निम्नलिखित कारण थे। (१) १७५६ ई० में सिराजुद्दौला ने बंगाल का शासन हाथ में लेते ही अंग्रेजों को दुर्ग फोर्ट विलियम की मरम्मत कराने से रोका। किन्तु अंग्रेजों ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया। दूसरा राज्यद्रोही किशनदास धनाढ्य को अपने किले में स्थान भी दिया, जिससे सिराजुद्दौला को बड़ा क्रोध आया। तीसरा १७१७ ई० में जो व्यापारिक सुविधाएँ अंग्रेजों को दी गयी थीं, उनका दुरुपयोग भी होने लगा था। इन्हीं कारणों से चिढ़कर नवाब ने कलकत्ता पर चढ़ाई की और अंग्रेजों को मनमानी करने का पाठ पढ़ाया। कहा जाता है कि सिराजुद्दौला ने १४६ गोरों को एक छोटी सी कोठरी में बन्द कर दिया और वे मर गये, (२) कलकत्ता की पराजय का समाचार पाते ही क्लाइव ने स्थल सेना के साथ और सेनापति वाटसन ने जलसेना के साथ कलकत्ता पर आक्रमण किया और सिराजुद्दौला को सन्धि करने के लिये बाध्य कर लिया। (३) सिराजुद्दौला के अल्हड़पन से लोग तंग आ गये थे। यही कारण था कि उसका प्रधान सेनापति मीरजाफर अब लोकप्रिय हो गया और लोग उसे नवाब बनाना चाहते थे। इसमें अंग्रेजों का भी बहुत बड़ा सहयोग था। जब यह सिरा-

जुद्दौला को मालूम हुआ तो उसने अपनी सैनिक तैयारी की, इधर क्लाइव भी ३० हजार सैनिकों के साथ १७५७ ई० में प्लासी के मैदान आ गया। अंग्रेज सैनिकों ने अचानक आक्रमण कर दिया, थोड़े संघर्ष के बाद नवाब पकड़ा गया और अपने सेनापति मीरजाफर के लड़के मीरन के हाथ से मारा गया। इसके बाद मीरजाफर बंगाल का नवाब बना।

मीरजाफर और मीरकासिम—मीरजाफर बंगाल के नवाब अली-वर्दी खां का बहनोई था और सिराजुद्दौला की सेना का प्रधान सेना-पति भी था। १७५७ ई० में बंगाल का शासन यह करने लगा, किन्तु क्लाइव की कठपुतली बनकर। मीरजाफर यह नहीं चाहता था कि वह क्लाइव का सदा गुलाम बनकर रहे, इसीलिये उसने डचों से गुप्त मन्त्रणा की, किन्तु सफल न हो सका। इसके बाद मीरजाफर को १७६१ ई० में राज्य सिंहासन से उतार दिया गया और उसके स्थान पर उसका दामाद मीरकासिम गद्दी पर बैठा। यह बड़ा योग्य शासक था, किन्तु इसे भी अंग्रेजों ने चैन नहीं लेने दिया। बिना एक पैसा कर दिये अंग्रेज कम्पनी व्यापार करने लगी और भारतीय व्यापारियों से भी मनमाना पैसा लेकर उन्हें परवाने लिखकर देने लगी। इससे नवाब की आय प्रायः समाप्त हो गयी। यह व्यवहार देखकर मीरकासिम ने निश्चय किया कि विदेशी शासन को समाप्त किया जाय। अंग्रेजों को इस बात का ज्ञान होते ही मीरकासिम गद्दी से उतार दिया गया और दोबारा मीरजाफर को नवाब बना दिया। इधर मीरकासिम ने अवध के नवाब से मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया, किन्तु बक्सर के मैदान में हार कर न जाने कहाँ भाग गया।

बंगाल का शासन छिन जाने पर और अंग्रेजों से पराजित होने पर मीरकासिम ने अवध नरेश शुजाउद्दौला और शाह आलम के साथ मिलकर बंगाल पर चढ़ाई की। किन्तु बुरी तरह परास्त हुआ। यह

प्लासी के बाद दूसरा युद्ध था, जिसने भारत में अंग्रेजों के साम्राज्य सुदृढ़ करने में सहयोग दिया। १७६५ ई० में क्लाइव ने शाह आलम और शुजाउद्दौला के साथ मित्रता बनाये रखने के ख्याल से इलाहाबाद में सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार शाह आलम ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजों को समर्पित कर दी। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते पहले उत्तरी भारत पर और फिर पूरे भारत पर अंग्रेजी शासन चलने लगा।

अवध और रुहेल खण्ड का संघर्ष—रुहेला जाति अफगानिस्तान से आकर यहाँ बस गयी थी। अवध के उत्तर पश्चिमी भाग में यह जाति अपना अधिकार रखती थी, जिसे हम रुहेल खण्ड के नाम से जानते हैं। इस जाति के लोग बड़े वीर, साहसी और परिश्रमी थे, किन्तु मराठे लोग इन्हें प्रायः लूट खसोट लेते थे। अपनी सारी योजनाओं का प्रयोग करने के बाद भी ये लोग मराठों को न रोक सके। अन्ततोगत्वा इन्होंने अवध के नवाब से मराठों को पराजित करने के लिये सैनिक सहायता माँगी, जिसे अवध के नवाब ने देना स्वीकार कर लिया। किन्तु इस सैनिक सहायता के बदले नवाब को ४० लाख रुपया देने की रुहेलों ने प्रतिज्ञा की। मराठों ने १७७३ ई० रुहेलों पर आक्रमण किया, परन्तु अवध नवाब की शक्ति को देखकर समय की गतिविधि के मर्मज्ञ मराठे पीछे हट गये और पुनः आक्रमण की प्रतीक्षा करने लगे। इसके बाद अवध नवाब शुजाउद्दौला ने रुहेलों से ४० लाख रुपया माँगा, किन्तु उन्होंने देने में असमर्थता प्रकट की। इसका बदला लेने के लिये नवाब ने वारेन हेस्टिंग्ज से सहायता माँगी, जो उस समय बंगाल का गवर्नर था। वारेन हेस्टिंग्ज ने सहायता देना स्वीकार कर लिया, जिसके बदले में सैनिक व्यय और ४० लाख रुपया नकद देने के लिये अवध नवाब ने कहा। लालची वारेन हेस्टिंग्ज ने तुरत एक सेना की टुकड़ी भेजी और रुहेलखण्ड

पर विजय प्राप्त की और वहाँ के सरदार हाथिड़ा रहमत खाँ मार दिया गया। इसके बाद रुहेलखण्ड अवध में मिला लिया गया। रुहेलों के विरुद्ध अवध में नवाब की सहायता करना वारेन हेस्टिंग्ज का घोर अन्याय था, क्योंकि आज तक ईस्टइण्डिया कम्पनी को रुहेलों ने कभी हानि नहीं पहुँचायी थी। रुहेलखण्ड का अवध में विलीन होना अंग्रेजों की उत्तरी-पश्चिमी सुरक्षा के लिये बड़ा लाभप्रद सिद्ध हुआ।

नन्दकुमार—राजा नन्दकुमार एक उच्चवंशीय बंगाली ब्राह्मण था और किसी कारण गवर्नर जनरल से शत्रुता रखता था। १७७५ ई० में उसने हेस्टिंग्ज पर यह दोष लगाया कि उसने मीर जाफर की विधवा (मुनीबेगम) से साढ़े तीन लाख रुपया घूस ली है। जब कौंसिल ने हेस्टिंग्ज से इस सम्बन्ध में पूछताछ की तो उसने उत्तर देने से इन्कार कर दिया और नन्दकुमार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने का अभियोग चला दिया। परन्तु अभी इस अभियोग का निर्णय नहीं हुआ था कि कलकत्ते के एक सेठ मोहन प्रसाद ने नन्दकुमार के विरुद्ध जालसाजी का मुकदमा चला दिया और उसे सुप्रीम कोर्ट से प्राणदण्ड मिला।

नन्दकुमार को प्राण-दण्ड दिये जाने के पश्चात् कई व्यक्तियों ने यह दोष लगाया कि चूंकि चीफ जस्टिस इम्पे और वारन हेस्टिंग्ज पुराने सहपाठी थे, इसलिए चीफ जस्टिस ने वारन हेस्टिंग्ज का पक्षपात करते हुए नन्दकुमार को प्राण-दण्ड दिया है। यह बात झूठी प्रतीत होती है, किन्तु झूठ हो या सच, इसका एक प्रभाव यह हुआ कि लोग वारन हेस्टिंज से डरने लगे और किसी को इतना साहस न हुआ कि वारन हेस्टिंग्ज पर कोई दोष लगाये।

मराठों का प्रथम युद्ध—सन् १७७२ ई० में नारायण राव मराठों का (पाँचवाँ) पेशवा बना, परन्तु उसके चाचा राघोबा ने

जो पेशवा बनने का उत्कट अभिलाषी था उसका वध करवा दिया और स्वयं पेशवा बनने का प्रयत्न करने लगा। नाना फर्नवीस ने जो एक प्रभावशाली मराठा सरदार था, उसका विरोध किया और नारायण राव के पुत्र माधव राव नारायण को, जिसका जन्म अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् हुआ था, पेशवा के सिंहासन पर बिठाकर स्वयं उसका संरक्षक बन गया और बहुत से मराठा सरदार नाना फर्नवीस के साथ मिल गये।

इस प्रकार असफल होने के पश्चात् राघोबा ने बम्बई की अँगरेजी सरकार से सहायता माँगी, और सूरत में सन्धि पत्र निश्चित हुआ, जिसमें निर्णय हुआ कि राघोबा इस सहायता के बदले में सालसट और बसीन के प्रदेश अँगरेजों को दे देगा। इस सन्धि के तुरन्त पश्चात् अँगरेजों ने सालसट पर अधिकार कर लिया, परन्तु बंगाल की सरकार ने इस निर्णय को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि यह उनकी स्वीकृति के बिना निर्धारित किया गया था और उन्होंने नाना फर्नवीस के साथ सन् १७७६ ई० में पुरन्धर के स्थान पर एक नई सन्धि कर ली, जिसमें निश्चय हुआ कि यदि सालसट द्वीप अँगरेजों के पास रहने दिया जाये तो वे राघोबा की सहायता नहीं करेंगे, परन्तु इतने में सूरत में किये गये समझौते के सम्बन्ध में इंगलैंड से डाइरेक्टरों की स्वीकृति मिल गई, इसलिये अँगरेजी सरकार को राघोबा का ही साथ देना पड़ा।

घटनायें—अँगरेजी सेना का एक दस्ता राघोबा की सहायता के लिये बम्बई से पूना की ओर चल पड़ा, किन्तु उसे मार्ग में ही पूर्ण पराजय हुई और अङ्गरेज अधिकारियों को बरगाँव के स्थान पर एक अपमानसूचक समझौता करना पड़ा। परन्तु डायरेक्टरों ने उस समझौते को अस्वीकार कर दिया और युद्ध यथापूर्व होता रहा। जनरल गोडार्ड ने अहमदाबाद जीत लिया और मेजर पोफम ने ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।

अब वारन हेस्टिंग्ज युद्ध को समाप्त करना चाहता था, क्योंकि एक तो व्यय अधिक बढ़ रहा था और दूसरे दक्षिण में हैदर अली का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इसलिये सन् १७८२ ई० में सालबाई के सन्धिपत्र द्वारा यह युद्ध बन्द हो गया।

मैसूर का प्रथम युद्ध—१७६९ ई० में अंगरेजों ने मैसूर के सुल्तान हैदरअली से प्रतिज्ञा की थी कि यदि किसी शत्रु ने उस पर आक्रमण किया तो वे उसकी सहायता करेंगे, किन्तु उस प्रतिज्ञा के कुछ समय पश्चात् जब मराठों ने उस पर आक्रमण किया तो अंगरेजों ने उसकी सहायता न की। इससे हैदरअली अत्यन्त रुष्ट था।

२. अमेरिका के स्वतन्त्रता के युद्ध में जो इंगलैंड और अमेरिका के बस्तिवासियों के मध्य युद्ध हुआ, फ्राँस (१७७८ ई०) इंगलैंड के विरोधीपक्ष में सम्मिलित हो गया। इस पर अँगरेजों ने भारत में फ्राँसीसियों के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। उनमें बन्दरगाह माहे भी थी, जिससे हैदर अली को बहुत लाभ था। इसलिये उसने अङ्गरेजों से माहे को खाली कर देने को कहा, परन्तु अंगरेजों ने उसकी परवाह न की। इस पर हैदरअली ने युद्ध छेड़ दिया।

घटनायें—हैदरअली ने एक विशाल सेना के साथ कर्नाटक पर आक्रमण किया और सारे प्रदेश को तहस-नहस कर डाला। अङ्गरेज कर्नल बेली को पराजय हुई और बक्सर विजेता मेजर मनरो भी अपनी तोपें कांजीवरम् के एक तालाब में फेंककर स्वयं मद्रास भाग गया। इसके पश्चात् सर आयर कूट हैदरअली के विरुद्ध बढ़ा और उसने पोर्टोनोवो, पोलीलूर और सोलनगढ़ के स्थानों पर हैदरअली को हराया। उस समय फ्रांस से एक सहायक सेना आ पहुँची, जिससे हैदरअली का साहस बढ़ गया, किन्तु अभी युद्ध हो रहा था कि १७८२ ई० में हैदरअली की मृत्यु हो गई।

हैदर अली की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने युद्ध चालू रखा तथा कई एक प्रदेश भी जीते। अन्त में १७८४ ई० में मंगलोर के सन्धिपत्र द्वारा दोनों पक्षों में सन्धि हो गई।

चेतसिंह से झगड़ा—चेतसिंह कम्पनी के अधीन बनारस का राजा था। वह प्रति वर्ष साढ़े बाईस लाख रुपया कम्पनी को कर देता था। हेस्टिंग्ज ने उससे १७७८ ई० में युद्ध के व्यय के लिए पाँच लाख रुपया वार्षिक और माँगा। चेतसिंह ने दो वर्ष तो यह रुपया दिया, किन्तु फिर टालमटोल की। इस पर हेस्टिंग्ज ने राजा पर पचास लाख रुपया दण्ड लगा दिया और उसे उगाहने स्वयं बनारस पहुँचा और राजा को वन्दी बना लिया। इस घटना से प्रजा वारन हेस्टिंग्ज के विरुद्ध भड़क उठी और वारन हेस्टिंग्ज को प्राण बचा कर चुनार भाग जाना पड़ा। राजा चेतसिंह भी अङ्गरेजों की कैद से भाग निकला। इस झगड़े से कम्पनी को कोई विशेष रुपया हाथ न लगा, परन्तु इतना अवश्य हुआ कि चेतसिंह से राज्य छीन कर उसके भांजे को राजा बना दिया और कर की राशि बढ़ा कर चालीस लाख रुपया वार्षिक कर दी गई।

अवध की बेगमों की घटना—जब बनारस से कोई धनराशि हाथ न लगी तो हेस्टिंग्ज ने दूसरा उपाय सोचा। अवध के नवाब आसफुद्दौला से अंग्रेजों को बहुत सा रुपया लेना था, क्योंकि उसने पिछले कई वर्षों से अपने प्रान्त में स्थित अङ्गरेजी सेना का व्यय नहीं चुकाया था। हेस्टिंग्ज ने उससे रुपया माँगा, किन्तु उसने उत्तर दिया कि मेरे पास रुपया नहीं है, क्योंकि मेरी माता और दादी ने सारा रुपया अपने अधिकार में कर लिया है। यदि आप बेगमों से रुपया प्राप्त करने में मेरी सहायता करें तो मैं अपना सारा ऋण चुकता कर दूँगा। हेस्टिंग्ज का विचार था कि बेगमों ने चेतसिंह के विद्रोह में उसकी सहायता की थी। अतएव उसने इस काम में नवाब की सहायता की और बेगमों को तंग करके ७६ लाख रुपया प्राप्त कर लिया।

हेस्टिंग्ज के उपरिलिखित दोनों कार्य अनुचित थे। उसने बेगमों तथा च्येतसिंह पर अत्याचार किया, इसलिए जब वह इंगलैंड लौटा तो उस पर इन तथा इसके अतिरिक्त कई एक अन्य दोषों उदाहरण-तया घूसखोरी और रुहेलों के युद्ध में अवध के नवाब की सहायता करने आदि के आधार पर मुकदमा चलाया गया, जो लगभग सात वर्ष चलता रहा। इसमें उसका सारा उपार्जित धन व्यय हो गया, किन्तु अन्त में वह दोषमुक्त कर दिया गया और कम्पनी ने उसकी वृत्ति नियत कर दी।

अभ्यास

[क] पुर्तगालियों की साम्राज्य लिप्सा का परिचय देकर उनके पतन के कारणों पर प्रकाश डालिये।

[ख] डच, अंग्रज और फ्रांसीसियों के बारे में आप क्या जानते हैं? संक्षिप्त उत्तर दो।

[ग] सिराजुद्दौला, मीरजाफर और मीर कासिम परे पृथक्-पृथक् नोट लिखो।

[घ] अवध और रुहेल खण्ड के संघर्ष के बारे में आप क्या जानते हैं? स्पष्ट उत्तर दो।

[ङ] वारनहेस्टिंग्ज के भारतीय कार्यों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डालकर उचित अनुचित की सप्रमाण पुष्टि कीजिये।

—o—

षोडश खंड

हैदरअली, टीपुसुल्तान, रणजीत सिंह, पेशवा

हैदरअली—हैदरअली अठाहरवीं शताब्दी के उन शूर वीरों में प्रमुख स्थान रखते हैं, जिन्होंने अंग्रेजों से डटकर लोहा लिया था। इसका नाम सुनते ही अंग्रेजों की सेना में खलबली मच जाती थी। इस असाधारण शूरवीर का जन्म १७२२ ई० में हुआ। हैदर अली का पिता एक साधारण फकीर था। अतः हैदरअली की प्रारम्भिक शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध न हो सका। किन्तु उसने स्वयं श्रीरंगपट्टम में रहकर चिरकाल तक शस्त्र-अस्त्रों का प्रयोग, घुड़सवारी और राजनीति की चालों का अच्छा अभ्यास किया। फलस्वरूप मैसूर राज्य की सेना में साधारण सिपाही रहा। किन्तु होनहार अली ने अपनी योग्यता का वहाँ रहकर खूब परिचय दिया, जिससे प्रसन्न होकर वहाँ के राजा ने १७५५ में उसे सेनापति घोषित कर दिया। सेनापति के कार्यकाल में अली ने मैसूर-राज्य से शत्रुता रखने वालों का खूब दमन किया। यही कारण था कि वहाँ की हिन्दू जनता भी उसे तन-मन धन से मानती थी। १७६६ ई० में मैसूर के राजा की अचानक मृत्यु हो जाने पर हैदरअली ने स्वयं राज्य-सिंहासन पर पदार्पण किया और अपने को सुल्तान घोषित कर दिया।

हैदरअली और मैसूर का पहला और दूसरा युद्ध—हैदरअली को राज्यसिंहासन पर बैठते ही कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। क्योंकि उसकी इस प्रकार साधारण सैनिक से सुल्तान बनने की उन्नति प्रायः अंग्रेज, मराठा और निजाम के लिये सिर-

दर्द बन गयी। हैदरअली ने अपनी चतुरता से निजाम और मराठों को किसी प्रकार कुछ ले देकर प्रसन्न कर लिया, जिसका फल यह हुआ कि निजाम और हैदर अली की संयुक्त सेना ने अंग्रेजों पर आक्रमण किया। किन्तु अंग्रेज कर्नल स्मिथ द्वारा १७६७ ई० में ट्रिनोवली और चंगामा के स्थान पर यह संयुक्त सेना बुरी तरह पराजित की गई। इस पराजय ने निजाम को भीरु बना दिया और वह अंग्रेजों की शरण में आ गया। किन्तु वीर हैदर अली ने अपनी अनुपम रणचातुरी से कर्नाटक आदि राज्यों का दमन किया और मद्रास जा पहुँचा। मद्रास की सरकार भी तो इस वीर से युद्ध करने से पहले ही भयभीत हो गयी और उससे सन्धि कर ली। इस प्रकार अंग्रेजों ने हैदर अली से प्रतिज्ञा की कि हम लोग आपस में एक दूसरे से कभी नहीं लड़ेंगे, अपितु आवश्यकता पड़ने पर सहायता करेंगे। किन्तु १७७१ ई० में मराठों ने हैदर अली के राज्य मैसूर पर चढ़ाई की। अंग्रेजों से सहायता माँगने पर हैदर अली को सिवा कोरा जवाब मिलने के और कुछ न मिला। यही कारण था कि बाद में हैदर अली सन्धि भंग करनेवाली अंग्रेज जाति के कट्टर शत्रु बन गया।

राज्य प्रबन्ध—हैदरअली की राज्य-प्रबन्ध प्रणाली बड़ी उत्तम कही जा सकती है, क्योंकि वह हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव का नाम तक न जानता था। सरकारी कार्यालयों में केवल वे ही व्यक्ति जा पाते थे जो योग्य और चरित्रवान होते थे। राज्य के प्रत्येक विभाग का दिग्दर्शन करना हैदरअली अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता था। अनुशासन पालन पर उसका विशेष ध्यान रहता था। वह स्वयं कभी खाली बैठना पसन्द न करता था और अपने कर्मचारियों को भी वैसा ही करने की आज्ञा देता था। उसने अंग्रेजों के विरुद्ध दो युद्ध लड़े। दूसरे में उसकी मृत्यु १७८२ ई० में हो गयी। इसमें सन्देह नहीं कि हैदर अली एक योग्य शासक एवं चतुर सेनापति

था। अनपढ़ होते हुए भी वह बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी, क्योंकि वह बड़े बड़े लेख एक ही बार सुनकर याद रख सकता था। अनेक भाषाओं में वह बोल सकता था। मनुष्य परखने में उसकी शक्ति वस्तुतः प्रशंसनीय थी। निर्धनों की सेवा और सहायता करना उसके जीवन का मुख्य ध्येय था।

टीपु सुल्तान और युद्ध—टीपु सुल्तान लगभग ३० वर्ष की आयु में अपने पिता हैदर अली की मृत्यु के बाद मैसूर राज्य की गद्दी पर बैठा। इसमें सन्देह नहीं टीपु बड़ा वीर और साहसी था, किन्तु उसमें अपने पूर्वज जैसी दूरदर्शिता का पूर्णरूप से अभाव था। यही कारण था कि उसने मराठों के साथ शीघ्र ही सम्बन्ध बिगाड़ लिया। महत्त्वाकांक्षी टीपु सुल्तान ने १७८९ ई० में ट्रावनकोर के हिन्दू राजा पर आक्रमण किया, जो अंग्रेजों के संरक्षण में था, इस आक्रमण का समाचार पाते ही उस समय के [अङ्गरेज गवर्नर जेनरल लार्ड कार्नवालिस ने निजाम और मराठों के सहयोग से टीपु के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। पहले तो टीपु ने अपने शत्रुओं को पराजित कर दिया। यह देखकर लार्ड कार्नवालिस ने सेना सञ्चालन अपने हाथ में लिया और बंगलौर को अपने अधीन कर टीपु को "अरीकेरा" के स्थान पर पराजित कर दिया। किन्तु परिस्थिति वश अङ्गरेजों की सेना को पीछे हटना पड़ा। यह देख टीपु सुल्तान ने फिर अपनी विजय की चेष्टाएँ आरम्भ कर दीं। फलस्वरूप १७९२ ई० में लार्ड कार्नवालिस ने श्रीरंगपट्टम के स्थान पर टीपु को घेर लिया। अपनी विजय के लक्षण न देखकर टीपु ने सन्धि करना ही उचित समझा। इस सन्धि-पत्र द्वारा टीपु ने अपना आधा राज्य और तीन करोड़ रुपया देने की प्रतिज्ञा की। सन्धि के अनुसार पाया हुआ आधा राज्य अंग्रेज, निजाम और मराठों ने आपस में बाँट लिया।

अङ्गरेजों के साथ सन्धि करके भी टीपुसुल्तान प्रसन्न न था, क्योंकि वह यह कभी न चाहता था कि मेरे राज्य के आधे भाग पर और लोग शासन करें। यही कारण था कि उसने १७९८ ई० में गवर्नर जनरल लार्ड वैलजली के शासनकाल में फ्रांसीसियों से मेल कर लिया और अंग्रेजों को देश से निकालने की योजनायें बनाने लगा। इधर जब गवर्नर जनरल लार्ड वैलजली ने अपनी नीति के अनुसार सबसिडियरी सिस्टम अपनाने को टीपू से पूछा तो उसने अपमान सूचक उत्तर दिया। क्योंकि सबसिडियरी सिस्टम के अनुसार भारत का कोई भी राजा अङ्गरेजों की आज्ञा विना न तो किसी अन्य राज्य से युद्ध कर सकता था और न तो सन्धि। अपने इस अपमान का बदला लेने के लिये अङ्गरेजों ने टीपु सुल्तान पर तीन ओर से आक्रमण कर दिया। सेना के पहले विभाग का नेतृत्व मद्रास के जनरल हैरिस की देख-रेख में था, दूसरे विभाग का संचालन बम्बई के जनरल स्टुअर्ट कर रहे थे, तीसरा विभाग जो निजाम की सेना का था, उसके सेनापति स्वयं गवर्नर जनरल वैलजली के छोटे भाई आर्थर वैलजली कर रहे थे। इन सेनाओं का कुछ समय तक तो टीपु ने डटकर सामना किया, किन्तु अन्त में हारकर उसने अपने दुर्ग श्रीरङ्गपट्टम का आश्रय लिया और वहाँ मारा गया। इससे अंग्रेजों को बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि उनका हैदर अली के बाद यह दूसरा कट्टर शत्रु था, जो मारा गया था। इसके बाद मैसूर की रियासत पर अङ्गरेज शासन चलने लगा।

टीपु सुल्तान का चरित्र—टीपु सुल्तान में अपने पिता हैदरअली के प्रायः राज्य प्रबन्ध आदि गुण थे। वह स्वयं विद्वान था और विद्वानों का आदर करता था। नशीले पदार्थों से उसे बड़ी घृणा थी। भेद भाव किस चिड़िया का नाम है उसे ज्ञात तक न था। उसके राज्य की अधिकांश जनता हिन्दू थी, जो उससे पूर्ण रूप से

सन्तुष्ट थी। क्योंकि वह अपने राज्य के प्रसिद्ध मन्दिरों की रक्षा का सदैव उचित प्रबन्ध करता था और उन्हें राज्य कोष से मासिक सहायता भी देता था। स्वतन्त्र जीवन यापन करना उसके जीवन का सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य था। यही कारण था कि उसने अंग्रेजों से बार-बार टक्कर ली। अन्त में अपने पिता का राज्य सदैव के लिये खोकर भी आज इतिहास में टीपु सुल्तान आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इसीसे उसकी महानता नापी जा सकती है।

राजा रणजीतसिंह—राजा रणजीत सिंह के नाम के साथ-साथ सिक्ख साम्राज्य की कहानी भी जुटी हुई है। क्योंकि इसी महान् विभूति ने सिक्ख साम्राज्य की नींव डाली थी। रणजीत सिंह का जन्म १७८० ई० में गुजरांवाला (आज कल यह स्थान पाकिस्तान में पड़ता है) में हुआ थ। उनके पिताजी सुखरचक्या मिसल के नेता महा सिंह थे। रणजीत सिंह की बांई आँख चेचक के कारण बचपन में जाती रही। अभी उनकी आयु १२ वर्ष की भी न थी कि रणजीत सिंह के पिता ने स्वर्गारोहण किया। इसके बाद वे मिसल के सरदार बनाये गये। १६ वर्ष की आयु में कन्हैयालाल मिसल में उनकी शादी हो गई। इस प्रकार दो मिसलों के मिलने पर राजा रणजीत सिंह की शक्ति सुदृढ़ हो गयी।

शक्ति हाथ में आ जाने पर राजा रणजीत सिंह ने अपनी राज्य सीमा बढ़ाने का प्रयास किया। १७९८ ई० में पंजाब के कई भागों पर अफगानिस्तान के अहमद-शाह अब्दाली के पोते जमान शाह ने अधिकार जमा लिया था। किन्तु जमान शाह को शीघ्र ही अपने देश को लौटना पड़ा, क्योंकि वहाँ विद्रोह हो गया था। इस शीघ्रता के कारण उसकी कई तोपें झेलम नदी के किनारे रह गईं, जिन्हें राजा रणजीत ने उसके पास सुरक्षित पहुँचा दिया। इस ईमानदारी पर प्रसन्न होकर शाह ने लाहौर रणजीत सिंह को दे दिया। लाहौर का राज्य हाथ में आते ही राजा रणजीत सिंह ने सतलज नदी तक

सारे मध्य पञ्जाब पर अधिकार कर लिया। इसके बाद सतलज पार कर अन्य रियासतों पर भी अधिकार करना चाहा, किन्तु लार्ड मिन्टो के प्रतिनिधि चार्ल्स मैटकाफ ने अमृतसर में आकर सन्धि कर ली। इस सन्धि के आधार पर सतलज नदी रणजीत सिंह के राज्य की सीमा समझी गई और सतलज नदी की दूसरी ओर की रियासतें अंग्रेजों के अधीन रहीं। उस प्रतिज्ञा का पालन राजा रणजीत सिंह ने मरते दम तक किया। इस सन्धि के अनुसार राजा रणजीत सिंह ने अपने राज्य की सीमा पूर्व की ओर न बढ़ाकर उत्तर पश्चिमी और दक्षिण पश्चिमी प्रान्तों को जीतकर बढ़ाई। सिक्ख साम्राज्य की सुदृढ़ नींव डालने के लिये अटक, मुल्तान, काश्मीर, हजारा, बन्नू, डेराजात एवं पेशावर आदि प्रान्त राजा रणजीत सिंह ने जीते और अन्त में १८३९ ई० में वे मर गये।

राज्य प्रबन्ध—अपने राज्य को सुचारु ढंग से चलाने के लिये राजा रणजीत सिंह ने चार प्रान्त घोषित किये, लाहौर, काश्मीर, मुल्तान और पेशावर। प्रान्तों को जिलों में बाँटा गया। प्रत्येक जिले का स्वामी कारदार कहलाता था, जिसपर वहाँ की पूर्ण शान्ति रखने की पूरी जिम्मेदारी थी। न्याय बड़ा ही सरल और सस्ता था। आज की तरह धनराशि व्यय करने की आवश्यकता न पड़ती थी। बड़े-बड़े अपराधों के लिये ही केवल कठोर दण्ड दिया जाता था। गाँव की पंचायतें अपना स्वयं निर्णय करती थीं, किन्तु अन्तिम अपील महाराजा के पास होती थी। साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का न्यायादि में प्रयोग बिलकुल न होता था। आय के साधन के लिये कृषिकर था, जो $\frac{1}{3}$ या समय पड़ने पर $\frac{1}{2}$ भी लिया जाता था। सेना सम्बन्धी प्रबन्ध राजा रणजीत सिंह का अत्युत्तम था। सैनिकों को योरोपीयन ढंग से शिक्षा दी जाती थी। सेना के पास ५०० उच्च कोटि की तोपें भी थीं। राजा को घुड़सवारी का बड़ा शौक था। कुल सेना लगभग ८००० थी। सैनिक सरदारों में हरिसिंह

नलुवा का स्थान सर्वोत्कृष्ट था, क्योंकि उसने अनेक बार पठानों को हराया और उनको अपने राज्य में मिलाया था। अन्त में हरि सिंह नलुवा पठानों से लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार राजा रणजीत सिंह का राज्य प्रबन्ध योग्य कर्मचारियों द्वारा होता था।

रणजीत सिंह का चरित्र और उनके उत्तराधिकारी---राजा रणजीतसिंह बड़े साहसी और कर्मठ व्यक्ति थे। यही कारण था कि आगे चल कर उन्हें 'शेरे-पञ्जाब' और अर्थात् 'पञ्जाब केसरी' की उपाधि मिली। शासन की योग्यता उन्हें जन्म जात गुण के रूप में मिली थी। अनपढ़ होने पर भी वे अपने तर्कों के सामने बड़े-बड़े विद्वानों को बोलने न देते थे। विद्वानों और शूर वीरों का सम्मान करना वे पहला कर्त्तव्य समझते थे। किसी के मत के प्रति वे घृणा भाव न रखते थे, क्योंकि उनका विश्वास था कि राजा प्रजा की सेवा करने के लिये हैं। सेना का प्रत्येक व्यक्ति उनसे प्रेम और श्रद्धा का वर्ताव करता था, क्योंकि प्रत्येक सैनिक की आवश्यकताओं की पूर्ति राज्य कोष से होती थी। कर्मपरायणता, सत्यवादिता आदि गुणों के वे धनिक थे। आगे चलकर इन्हीं गुणों के कारण वे खालसा साम्राज्य की नींव डाल सके। यह सत्य है कि उनमें शारीरिक शक्ति के साथ-साथ ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा भी थी। क्योंकि इतिहास साक्षी है कि १८३९ ई० में महाराजा रणजीत सिंह के मरते ही खालसा साम्राज्य में अशान्ति फैल गई। अब खालसा साम्राज्य को चिर-स्थायी रखने की प्रतिभा किसी में न थी। फल यह हुआ कि सैनिकों को समय पर वेतन न मिलने के कारण उन्होंने सर्वत्र लूट खसोट प्रारम्भ कर दी। थोड़े ही वर्षों में कई राजकुमारों और कर्मचारियों को जान से हाथ धोना पड़ा। अन्त में १८४३ ई० में महाराजा रणजीत सिंह का छोटा लड़का दिलीप सिंह गद्दी पर बैठाया गया। दिलीप सिंह के संरक्षण का कार्य उसकी माता जिन्दाबाई के हाथ में

था। किन्तु अब सिक्ख सरदारों का खालसा राज्य में बिलकुल विश्वास न था। यही कारण था कि अङ्गरेजों को सिक्ख साम्राज्य पर आक्रमण करने का गुप्त रीति से निमन्त्रण दिया गया। परिणाम स्वरूप अङ्गरेजों के साथ सिक्खों का पहला युद्ध हुआ, जिसमें सिक्ख साम्राज्य की हार हुई, क्योंकि वहाँ प्रभावशाली व्यक्तियों का अभाव था। दोआबा, जालन्धर आदि प्रदेशों पर अङ्गरेजी शासन चलने लगा। सिक्खों की वैमनस्यता ने इतना जोर पकड़ लिया कि अङ्गरेजों ने अपने १८४८ ई० के द्वितीय युद्ध में सिक्ख साम्राज्य का पूर्ण रूप से खातमा कर दिया। इस प्रकार १८४९ ई० में पञ्जाब अङ्गरेजी साम्राज्य की एक कड़ी बन गया।

पेशवा—पेशवा वंश की उत्पत्ति महाराज शिवाजी के उन मन्त्रियों से हुई, जो शिवाजी के शासन कार्य में हाथ बँटाते थे। उस समय ८ मन्त्रियों का एक मन्त्रिमण्डल था, जिसने शिवाजी की मृत्यु के बाद शासन अपने हाथ में लिया। किन्तु अष्टप्रधानों में केवल पेशवा वंश ने ही अत्यधिक उन्नति की। यही कारण कि आज भारतीय इतिहास में उनका नाम आदर का विषय बना हुआ है। प्रमुख पेशवा ये हैं, जिनका वर्णन हम आगे करेंगे—(१) बालाजी विश्वनाथ, (२) बाजीराव प्रथम, (३) बालाजी बाजीराव, (४) माधव राव, (५) नारायण राव (६) माधव नारायाण राव, (७) बाजीराव द्वितीय।

बालाजी विश्वनाथ—पेशवा वंश का संचालक बालाजी विश्वनाथ था। इसने अपनी विलक्षण बुद्धि के प्रभाव से मराठा राज्य के जर्जर शरीर को पुनः सुन्दर रूप दिया और पेशवा का पद पैतृक बना दिया। बालाजी विश्वनाथ के शासन काल की सर्व प्रधान घटना सैय्यद भाइयों की सहायता करना था। सैय्यद भाइयों ने अपनी सहायता के लिये इस पेशवा वंश के संचालक को देहली बुलाया और इसकी सहायता पाकर वे फरुख सय्यद को पद-

च्युत करने में पूर्ण सफल हुए। उस विजय के बदले सैय्यद भाईयों ने मराठों को दक्षिण के सूबों से कर आदि लेने के अनुमति दे दी। इस प्रकार पूरे दक्षिण पर मराठों का आधिपत्य हो गया। मराठों के संगठन का इस समय बड़ा प्रचार किया गया। यही कारण था कि राजा की आज्ञा थी कि कर का $\frac{1}{3}$ भाग तो राज्यकोष में जमा किया जाय और $\frac{2}{3}$ मराठा सरदार अपने पास रक्ख लें। इससे लोगों की आर्थिक दशा अच्छी होने लगी। किन्तु अन्त में यह कर प्रणाली पेशवा वंश के लिये घातक सिद्ध हुई। अन्त में १७२० में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गयी।

बाजीराव प्रथम---बाजीराव प्रथम अपने पिता बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के बाद पेशवा बनाया गया। अपनी योग्यता और साहस में बाजीराव प्रथम का स्थान बड़ा आदरणीय समझा जाता है। क्योंकि इसके पिताने तो केवल दक्षिण भारत में ही राज्य की सुदृढ़ता का प्रयत्न किया। किन्तु इसने उत्तरी भारत में भी प्रयत्न किया। बाजीराव की नीति सदा यह थी कि सर्व प्रथम दिल्ली का राज्य अपने हाथ में लेना। यही कारण था कि वह सदा शाहू को कहा करता था कि 'हमें पहले मुगलवंश के वृक्ष का मूल काट देना चाहिये। फिर शाखाएँ और पत्ते तो स्वयं सूखकर समाप्त हो जायेंगे।' इसके नेतृत्व में मराठों ने गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया था। इसके बाद देहली को बढ़े। किन्तु निजामुलमुल्क ने इन्हें दक्षिण की ओर से आकर रोका, किन्तु मराठों की चमचमाती तलवारों ने उसे भूपाल के समीप ही पराजित कर दिया। यह बाजीराव प्रथम की ही योग्यता थी कि पुर्तगालियों के हाथ से मराठों ने बसीन टापू भी छीन लिया। इस प्रकार द्वितीय पेशवा के शासनकाल में मराठों की खूब उन्नति हुई।

बाजीराव के समय में ही कई मराठा जो कर आदि एकत्र करते थे, वहाँ के स्वतन्त्र शासक बन बैठे—(१) राघोजी भोंसला

ने नागपुर में, (२) मल्हार राव होल्कर ने इन्दौर में, (३) राना जी सिन्धिया ने ग्वालियर में, (४) विल्लाजी गायक वाड़ ने बड़ौदा में अपनी स्वतन्त्र रियासतें स्थापित कर लीं। पेशवा ने इन सबको मिलाकर एक सुदृढ़ दल बनाया, जिसका नाम मराठा दल रक्खा। पेशवा इस दल का मुखिया होता था।

(३) बालाजी बाजीराव—बालाजी बाजीराव ने अपने पिता बाजीराव प्रथम की मृत्यु के बाद १७४० में पेशवा पद को अलंकृत किया। सचमुच यह समय मराठों के लिये स्वर्ण युग था। क्योंकि इस काल में चारों ओर मराठों की सेना विजय पा रही थी। बालाजी बाजीराव की योजना का फल था कि राघोजी भोंसला ने मध्य भारत को पूर्णरूप से जीत लिया और बंगाल पर भी आक्रमण कर दिया। यह स्थिति देखकर बेचारे वहाँ के सूबेदार अलीवर्दी खाँ ने उड़ीसा प्रान्त मराठों को सौंप दिया और बंगाल, बिहार से बारह लाख कर देना भी स्वीकार किया। इधर पेशवा के भाई राघोबा ने पञ्जाब पर पूर्ण अधिकार जमा लिया और वहाँ से अहमदशाह अब्दाली के प्रतिनिधि को निकाल दिया। इसके बाद मुगलिया सरकार ने भी मराठों को कुछ करके रूप में देना स्वीकार कर लिया। अब मराठों का गेरुआ झण्डा अटक आदि स्थानों पर बड़े गौरव से फहराता था। इसलिये वह सचमुच मराठों की उन्नति का युग था। किन्तु भाग्य सदैव साथ नहीं देता। ठीक उसी समय जब मराठा वंश खूब फल-फूल रहा था, अहमदशाह अब्दाली ने पानिपत की तीसरी लड़ाई में मराठों को पराजित कर दिया। इस पराजय में मराठों की लापरवाही ही प्रधान रूप से कारण थी। इसी शोक में देशभक्त बालाजी बाजीराव पेशवा ने १७६१ ई० में अपनी अन्तिम साँस ली। इसके बाद अहमद शाह अब्दाली मराठों की शक्ति को कम करके अपने देश लौट गया। किन्तु अंग्रेजों ने समय से लाभ उठाकर अपनी शक्ति बढ़ानी शुरू कर दी।

(४) माधवराव—माधवराव जब पेशवा बनाया गया उस समय वह नाबालिग था। यही कारण था कि उनकी देख-भाल उसके चाचा रघुनाथ राव (राघोवा) ने की। समय से लाभ उठाने के विचार से १७६२ ई० में हैदराबाद के शासक निजाम अली ने मराठों पर आक्रमण कर दिया, जिसमें उसे पराजित होना पड़ा। माधवराव बड़ा धैर्यवान् था, कई बार अपने चाचा राघोवा से भी झगड़ा हो जाने पर घबराता न था। निजाम अली के द्वितीय आक्रमण के समय मराठों में वैमनस्य चल रहा था। फिर भी उसे मुँह की खानी पड़ी। इस विजय ने पेशवा की कीर्ति को चार चान्द लगा दिये। इस विषय में नाना फड़नवीस और महादजी सिन्धिया का विशेष हाथ था। १७६९ ई० में उत्तरी भारत पर फिर से धाक जमाने के विचार से पेशवा ने रामचन्द्र गणेश, महादजी सिन्धिया एवं तुकाजी होल्कर के नेतृत्व में एक सेना भेजी, जिसने बुन्देल खण्ड, मालवा आदि को अधीन किया। इसके बाद रुहेल और अफगानों को पराजित कर दिल्ली में पुनः गेरुवा झण्डा गाड़ दिया। इस प्रकार उत्तर भारत में मराठों की विजय दुन्दुभी बजने लगी। इधर १७७२ ई० में अचानक पेशवा की मृत्यु हो गयी और मराठों का फिर पतन आरम्भ हो गया।

नारायणराव—नारायणराव १७ वर्ष की अवस्था में अपने पिता माधवराव की मृत्यु के बाद पेशवा बना, किन्तु शीघ्र ही अपने चाचा राघोवा के षड़यन्त्र से मारा गया। इसके बाद नारायणराव का एक मात्र लड़का माधवराव ४० दिन का होने पर पेशवा बनाया गया। इसकी सहायता के लिये फड़नवीस, हरिपन्त, फड़के आदि द्वादश मराठों ने एक समिति बनायी, जो पेशवा की रक्षा का सदैव ध्यान रखती थी। इस प्रकार का संगठन देखकर राघोवा वहाँ से भाग गया। इसके बाद राघोवा ने अंग्रेजों से मिलकर मराठों को हानि पहुँचाने में कोई कसर नहीं की।

नाना फड़नवीस—नाना फड़नवीस माधवराव नारायण का एक माना हुआ वीर मन्त्री था, जिसने पुनः मराठा वंश की यश पताका फहरायी थी। एक बार नाना फड़नवीस ने हैदराबाद के निज़ाम को चौथ चुकाने के लिये आज्ञा दी। किन्तु चौथ देना तो दूर रहा, उल्टा निज़ाम ने भरे दरबार में फड़नवीस का अपमान किया। इस अपमान का बदला १७९५ ई० में नाना ने लेने के लिये आक्रमण कर दिया, जिसमें मराठों ने पूर्ण विजय प्राप्त की और निज़ाम ने झुककर सन्धि की प्रार्थना की। सन्धि के बदले में दौलताबाद का किला और ३ करोड़ रुपया एवं युद्ध व्यय निज़ाम को देना पड़ा। इसके बाद पेशवा माधवराव की छत से गिरकर मृत्यु हो गयी। माधवराव की मृत्यु क्या थी, यह मराठा वंश में सन्मान पानेवाले पेशावावंश की मृत्यु थी। १७९६ ई० में अयोग्य राघोबा का अयोग्य पुत्र बाजीराव द्वितीय पेशवा बना। इससे नाना फड़नवीस पूर्णरूप से असन्तुष्ट थे। इसलिये बाजीराव द्वितीय फड़नवीस को बन्दी कर लिया. किन्तु राज्य की नाव डगमगाती देख पुनः पेशवा ने मन्त्री पद पर नाना फड़नवीस को १७९८ ई० में नियुक्त किया। मन्त्रीपद प्राप्त कर लेने पर भी अब फड़नवीस में वैसी कार्य-कुशलता न थी, क्योंकि पेशवा बड़ा अयोग्य था। १८०० ई० में नाना फड़नवीस की अचानक मृत्यु हो गयी और मराठा वंश रसातल की ओर तीव्रगति से सरकने लगा। फड़नवीस बड़ा योग्य मन्त्री था। उसने अपने जीतेजी अंग्रेजों को कभी दरबार में पैर नहीं जमाने दिया, क्योंकि वह अंग्रेजों की मक्कारी का पक्का जानकार था। दया, सत्यवादिता, उदारता आदि गुणों की सचमुच वह खान था।

अन्तिम पेशवा बाजीराव द्वितीय—बाजीराव द्वितीय बड़ा भीरु और निरुत्साही पेशवा था। इसने अपने पूर्वजों का नाम डुबाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। गद्दी पर बैठते ही इसने अङ्गरेजों

की बसीन सन्धि स्वीकार कर ली, यद्यपि यह सन्धि बड़ी अपमान-जनक थी, फिर भी पेशवा ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। परतन्त्र हो जाने पर भी पेशवा को अङ्गरेजों का हरेक कार्य में हस्तक्षेप अच्छा न लगता था। यही कारण था कि अन्त में पेशवा को अंग्रेजों के विरुद्ध शस्त्र उठाना पड़ा। बड़ौदा के गायकवाड़ का ऐसा मामला था, जिसने १८१५ ई० में पेशवा बाजीराव और अंग्रेजों में एक वैर की खाई खोद दी थीं। पेशवा गायकवाड़ स्थान को अपने राज्य का एक भाग मानता था, जब कि अंग्रेज १८०२ ई० की सन्धि के अनुसार अपने अधीन समझते थे। क्योंकि सन्धि की निम्न शर्तें पेशवा ने स्वीकार की थीं—(१) वह अंग्रेजों को सर्वो-प्रभु मानेगा (२) अपने दरबार में एक रेजीडेंट रखेगा, (३) फ्रांसीसियों को दरबार में स्थान नहीं देगा, (४) एक सहायक सेना अपने पास रखेगा, जिसके व्यय के लिये वह प्रदेश अङ्गरेजों को समर्पित करेगा, जिनकी वार्षिक आय २६ लाख रुपया के लगभग हो (५) अंग्रेजों की आज्ञा के बिना किसी से युद्ध या सन्धि न करेगा, (६) गायकवाड़ और निज़ाम के साथ जो झगड़े हैं, उनमें अंग्रेजों द्वारा दिये गये निर्णय स्वीकार करेगा। इन्हीं शर्तों के बल पर ही बाजीराव द्वितीय पेशवा बना था, जो सारी मराठा जाति की स्वतन्त्रता पर प्रत्यक्ष रूप से कुठाराघात था। अब पेशवा को गायकवाड़ के मामले में परास्त करने के लिये अंग्रेज दाँव सोचते रहते थे। मौका पाकर १८१७ ई० में उन्होंने एक ऐसी सन्धि की, जिसके अनुसार मराठा राज्यों पर पेशवा का कोई अधिकार न था। इस समाचार ने पेशवा को अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति करने को बाध्य किया। यही कारण था कि उसने भोंसला नरेश और होल्कर से अंग्रेजों की शक्ति कम करने के लिये प्रार्थना की, किन्तु कूटनीतिज्ञ अंग्रेज इस बात को भली प्रकार समझ गये और उन्होंने भोंसला को १८१७ ई० में और १८१८ ई० में होल्कर

सन्धि करने के लिये बाध्य कर लिया। इस प्रकार अपनी शक्तिक्षय होते देख पेशवा ने शस्त्र उठाया और पूना की रेजिडेन्सी को नष्ट-भ्रष्ट करके अंग्रेजों के शिविर पर धावा बोल दिया। पेशवा का सेनापति बाबू गोखले वहाँ अन्तिम दम तक लड़ा। किन्तु उसके मरते ही मराठा वंश के कलंक बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेजों के सामने पुनः घुटने टेक दिये। इसके बाद अंग्रेजों ने पेशवा को थोड़ी पेंशन पर बैठूर भेज दिया और वहाँ स्वयं राज्य करने लगे। बाजीराव का शेष जीवन किसी तरह व्यतीत हुआ और अन्त में १८५१ ई० में उसने आखिरी दम तोड़ दिया।

अभ्यास

[क] 'हैदरअली अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था' इसको सिद्ध करते हुए मैसूर के दो युद्धों का परिचय दो।

[ख] टीपु सुल्तान का चरित्र चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिये कि वह एक अच्छा योद्धा और राजनीतिज्ञ था।

[ग] 'राजा रणजीत सिंह खालसा साम्राज्य का संस्थापक था' इस उक्ति को सप्रमाण सिद्ध कीजिये।

[घ] प्रथम तीन पेशवाओं के जीवनचरित्र पर नोट लिखकर सिद्ध कीजिये कि उस समय मराठा वंश ने बहुत उन्नति की।

[ङ] नाना फड़नवीस, बाजीराव द्वितीय एवं मराठा वंश के पतन पर नोट लिखो।

—०—

प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध महारानी लक्ष्मीबाई और नाना साहब

अंग्रेजों के शासनकाल में सन् १८५७ का प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध अपना विशेष स्थान रखता है। अंग्रेज इसे सिपाही विद्रोह के नाम पुकारते हैं, जो पूर्णतः असत्य है। क्योंकि यह विद्रोह ऐसे समय में हुआ जब लार्ड डलहौजी की नीति के कारण सर्वत्र अत्याचार, अनाचार, दुराचार और कदाचार का बोलबाला था। इस स्वतन्त्रता युद्ध का बीजारोपण तो सन् १७५७ में हुई सिराजुद्दौला के साथ प्लासी की लड़ाई ही थी, जो धीरे २ भयंकर रूप धारण कर गयी। इस विद्रोह के ये मुख्य चार कारण थे:—(१) राजनैतिक, (२) सामाजिक तथा धार्मिक, (३) सेना सम्बन्धी, (४) फुटकर।

[१] राजनैतिक कारण—लार्ड डलहौजी ने अपनी लैप्स नामक नीति से सारे भारत के राजनैतिक मण्डल में हलचल मचा दी। क्योंकि इस नीति में यह था कि 'यदि किसी अधीन या कर देने वाले राज्य का पुत्रहीन राजा या नवाब मर जाय तो उसके दत्तक पुत्र को राज्य सिंहासन पर न बैठाकर वह राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया जाय'। इधर संयोगवश डलहौजी के शासनकाल में बहुत से राजा मरे, जो पुत्रहीन थे। उनके मरते ही इस नीति के अनुसार वहाँ के राज्य अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिये गये, जिनमें प्रसिद्ध ये थे:—सतारा, झाँसी, नागपुर, जैतपुर (बुन्देलखण्ड में), सम्बलपुर (उड़ीसा में), बघाट (शिमला के पास), उदयपुर (मध्यप्रान्त में),। इसका फल यह हुआ कि पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब, सन्तानहीन झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, अवध के नवाब के सम्बन्धी, देहली के बादशाह

बहादुरशाह, सतारा और नागपुर रियासतों के मराठे अंग्रेजों के कट्टर शत्रु बन गये और उन्हें भारत से बाहर निकालने की योजनाएँ बनाने लगे।

[२] सामाजिक तथा धार्मिक कारण—अंग्रेजों ने अपनी सभ्यता को हठपूर्वक भारतीयों पर लादने का प्रयास किया, जिसके लिये उन्होंने ये कार्य किये:—सती प्रथा का निषेध, ईसाई धर्म का प्रचार, विधवा विवाह का प्रचलन, धर्म परिवर्तन के बाद भी पैतृक सम्पत्ति पर अधिकार, पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार इत्यादि बातों से जनता का विश्वास हो गया कि अंग्रेज हमें ईसाई बनाना चाहते हैं। चारोंओर से ध्वनि हो रही थी कि हमारा धर्म खतरे में है।

[३] सेना सम्बन्धी कारण—भारतीय सेना के बल पर ही अंग्रेजों ने इधर-उधर अपने साम्राज्य का विस्तार किया था, किन्तु साम्राज्य की धाक जमते देख अंग्रेजों ने भारतीय सेना का पहले जैसा आदर करना छोड़ दिया। भारतीय सैनिकों को योग्यता होने पर भी बड़ा पद न मिलता था। अंग्रेज सिपाहियों के साथ खुलम-खुल्ले पक्षपात होने लगा। सन् १८५६ ई० में अंग्रेजों ने 'सर्व-भारती' नामक कानून बनाया, जिसके अनुसार भारतीय सेना समुद्र पार भी लड़ने के लिये भेजी जा सकती थी, जिसे ब्राह्मण सैनिक अधर्म समझते थे। बंगाल की सेना में अधिकतर लोग अवध-नरेश के सम्बन्धी थे, जो अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में देखना पाप समझते थे। अफगान युद्ध में अंग्रेजों के हार जाने पर अंग्रेजों के प्रति जनता की वैसी अच्छी भावना न थी, जैसी कभी पहले थी। भारतीय सेना का अंग्रेज सेना से पाँच गुणा अधिक होना आदि कारण थे, जिनके कारण इस स्वतन्त्रता युद्ध को खूब सहारा मिला।

फुटकर कारण—प्लासी की लड़ाई के बाद यह अफवाह जोर से चल रही थी कि १८५७ ई० में अङ्गरेजी राज्य समाप्त हो जायगा।

यही कारण था कि कुछ देशभक्त रात दिन जनता के अन्दर देश-भक्ति के भाव भर कर अङ्गरेजी साम्राज्य की जड़ें खोद रहे थे। इधर उन दिनों सैनिकों को नवीन राइफलें दी गयी थीं, जिनमें चरबी वाले कारतूस प्रयोग किये जाते थे। लोगों को विश्वास हो गया था कि कारतूसों के आगे गाय और सूअर की चरबी प्रयुक्त होती है। बस, इस विश्वास ने सैनिकों को अङ्गरेजों के विरुद्ध शस्त्र उठाने को बाध्य कर दिया। यह विद्रोह इतना फैला कि सर्वत्र अङ्गरेजों के विरुद्ध सैनिक और जनता भड़क उठी, जिसके मुख्य केन्द्र (१) देहली, कानपुर, लखनऊ, और मध्य भारत था। इस प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध का प्रारम्भ १० मई सन् १८५७ ई० में मेरठ के स्थान से हुआ। क्योंकि वहाँ ८५ सैनिकों ने चरबी वाले कारतूसों के प्रयोग करने में असमर्थता प्रकट की। फल यह हुआ कि वे बन्दी बना लिये गये। इसके बाद दूसरे सैनिकों ने संयुक्त विद्रोह किया, जिसमें कई गोरे सिपाही कुत्ते की मौत मारे गये। अपनी धाक जमते देख सैनिकों ने जनता के सहयोग से जेल पर आक्रमण कर दिया और ८५ सैनिकों को छुड़ा दिया, जिसका व्यापक प्रभाव पड़ा।

देहली—मेरठ के विद्रोहियों ने देहली पहुँचकर मुगल बादशाह को गद्दी पर बैठाया और वहाँ के कई अङ्गरेज सैनिक और अन्य अधिकारियों को यमलोक भेजा। इधर उधर से अनेक सैनिक टुकड़ियाँ भी देहली आ पहुँची। किन्तु दुर्भाग्यवश वीर पञ्जाब के सैनिकों ने इसमें भाग नहीं लिया, उल्टा अङ्गरेजों की सहायता के लिये दिल्ली को घेर लिया और अन्त में जनरल निकलसन की अध्यक्षता में दिल्ली पर अङ्गरेजों की विजय हुई, परन्तु ठीक उसी समय निकलसन मारा गया। इधर वृद्ध मुगल बादशाह बहादुर शाह बन्दी बनाकर रंगून भेज दिया गया और वहीं १८६२ ई० में वह मर गया। बहादुर शाह के दो पुत्र और एक पोता उसके सामने गोली से उड़ा दिये गये।

कानपुर—यहाँ के विद्रोही दल का नेतृत्व पेशवा के दत्तक पुत्र नाना साहब के हाथ में था। अङ्गरेजों ने नाना साहब पर विजय पाने के कई प्रयत्न किये, किन्तु उस वीर के आगे उनकी एक न चली और अन्त में उन्हें आत्म समर्पण करना पड़ा। इस संघर्ष में भारतीयों की भूखी और प्यासी तलवारों को खूब भोजन मिला। अन्त में जनरल हैवेलाक एक बड़ी सेना के साथ कानपुर आया, जिसमें नाना साहब को पराजित होकर भागना पड़ा।

लखनऊ—यहाँ के स्वतन्त्रता प्रेमियों ने चीफ़ कमिश्नर सर हैनरी लारेन्स के साथ सारी अङ्गरेज रेजीडेन्सी को घेर लिया। सर हैनरी के तो पहले ही आक्रमण में मारे डर के प्राण पखेरू उड़ गये, किन्तु उसके साथियों ने जनरल हैवेलाक, औटरम और सर कोलिन कैम्पवल के सहयोग से लखनऊ पर विजय प्राप्त की।

मध्यभारत—मध्य भारत में और बुन्देलखण्ड के स्वतन्त्रता के सेनानियों में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और नाना साहब के सेनापति ताँतिया टोपे का नाम विशेष आदरणीय है। सर ह्यूरोज के सेनापतित्व में एक बड़ी गोरों की सेना उपरोक्त स्वतन्त्रता प्रेमियों को दबाने के लिये बढ़ी, जिनका डटकर सामना किया गया। सुभद्रा कुमारी चौहान ने कहा भी है :—

बुन्देले हर बोलों के मुख, हमने सुनी कहानी।
खूब लड़ी मरदानी वह थी, झांसी वाली रानी ॥

किन्तु अन्त में असंख्य गोरों को अपने खड़ग का शिकार बनाकर इस वीरांगना ने वीरगति ली। इधर तांतिया टोपे ने भी अपने बल का अच्छा परिचय दिया, किन्तु अन्त में मारा गया। उपरोक्त स्वतन्त्रता प्रेमियों की कुर्बानी अन्त में रंग लायी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जनाजा उसके अपने भाई अङ्गरेजों के हाथ से ही निकाला गया और सदा के लिये दफनाया गया। इसके बाद यहाँ का शासन इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट ने अपने हाथ में ले लिया

और महारानी विक्टोरिया ने यह घोषणा की—(१) देशी राज्य के शासकों को अधिकार होगा कि वे पुत्रहीन अवस्था में पुत्र गोद में ले सकें, (२) धर्म के विषय में सबको स्वतन्त्रता होगी, (३) भेदभाव के बिना योग्यता के अनुसार सरकारी पद दिये जायेंगे, (४) विद्रोहियों को जिन्होंने प्रत्यक्ष रूप से कोई बहुत बड़ा अपराध नहीं किया क्षमा कर दिया जायेगा, (५) भारत की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं शिल्प सम्बन्धी उन्नति पर विशेष ध्यान दिया जायगा। लोगों का विचार है कि यह घोषणा अङ्गरेजी राज्य में भारतीयों की बहुत बड़ी विजय थी।

स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध में असफलता के कारण—(१) इस विद्रोह का कोई एक योग्य संचालक न था, जिसकी योजना पर लोग चलते। (२) भारतीय नवाबों और राजाओं में कई लोग ऐसे थे जो विद्रोह में भाग लेना तो दूर रहा, उल्टा विद्रोह दमन में अपने इन गौरांग प्रभुओं का सहयोग कर रहे थे। (३) विद्रोही सैनिकों के पास लड़ने के लिये पर्याप्त साधन न थे, जैसे अङ्गरेजों के पास थे। (४) साधारण जनता में इस विद्रोह का प्रचार नहीं हुआ, इत्यादि कारण थे कि अङ्गरेज सफल हुए। अस्तु, इतना तो प्रत्येक देशभक्त मानता है कि यह युद्ध हमारी आज की स्वतन्त्रता की आधारशिला थी।

महारानी लक्ष्मीबाई—इस वीरांगना का जन्म १९ नवम्बर सन् १८३५ ई० में भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनारस में हुआ। इनके पिता का नाम मोरोपन्त एवं माता का नाम भागीरथी बाई था। बाल्यावस्था में ही इनके चेहरे से तेज टपकता था। यही कारण था कि आगे चलकर इनकी सैनिक कार्यों में बड़ी रुचि हो गयी। नाना साहब के साथ विठूर में इनको प्रारम्भिक शिक्षा दी गयी। १८४० ई० में झांसी के राजा गंगाधर राव के साथ माता पिता ने इनका विवाह कर दिया। इनके घर में एक पुत्र हुआ, जिसकी दुर्भाग्यवश शीघ्र ही मृत्यु हो गयी। राजा ने दुःखी होकर

एक दामोदर राव नामक ५ वर्ष के लड़के को पुत्र बना लिया। इधर २१ नवम्बर सन् १८५३ ई० में राजा की अचानक मृत्यु हो गयी। रानी का विश्वास था कि अङ्गरेज अपनी सन १८१७ ई० में हुई सन्धि का पालन करेंगे। किन्तु लालची डलहौजी ने सन्धि को ठुकरा कर झांसी का राज्य अङ्गरेज साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया और रानी को यह कहकर कि बाद में वापस कर दिया जायगा, सब राज्य कोष भी हड़प लिया। अब रानी को ५ हजार रुपया मासिक मिलने लगा। इसे रानी ने अपमान समझा और विद्रोह कर दिया। फलस्वरूप ८ जून सन् १८५७ ई० में रानी ने मारते-मारते अङ्गरेजों को अपने दरबार से निकाल दिया और वहाँ स्वतन्त्र शासन करने लगी। रानी के शासन से प्रजा बड़ी प्रभावित हुई और उसने शासन कार्य में रानी को पूरा सहयोग दिया। किन्तु अङ्गरेज अपना यह अपमान न सह सके और ८ जनवरी १८५८ ई० में सर ह्यू रोज की अध्यक्षता में सेना भेज कर झांसी राज्य पर पुनः अधिकार करना चाहा। रानी ने बड़ी बहादुरी के साथ सामना किया और अङ्गरेजों को वापस जाने के लिये विवश कर दिया। इसी बीच में तोपखाने का अधिकारी खुदाबख्श और गुलाम गौसखां मारे गये, जिससे कुछ विश्वासघातियों का सहयोग पाकर अङ्गरेजों ने विजय प्राप्त की। इसके बाद उसी रात को झांसी की रानी अपने पुत्र दामोदर को पीठ पर बाँधे हुए घोड़े पर चढ़कर कालपी के लिये रवाना हुई। बीच में कुछ अङ्गरेज सिपाहियों ने हस्तक्षेप किया, जिनको महारानी की तलवार ने ठंडा कर दिया। किसी प्रकार झांसी की रानी अर्द्धरात्रि में कालपी पहुँची, किन्तु वहाँ भी अङ्गरेजों ने आक्रमण किया और उन्हें सफलता मिली। इसके बाद रानी ने कुछ सहयोगियों के साथ ग्वालियर पर आक्रमण करके वहाँ का राज्य अङ्गरेजों से जीत लिया। ग्वालियर का किला हाथ में आते ही झांसी की रानी के सहयोगियों की शक्ति पर्याप्त

सुदृढ़ हो गयी। राव साहब को वहाँ का पेशवा घोषित किया गया। अङ्गरेजों ने मौका पाकर वहाँ भी धावा बोल दिया। पेशवा तो अंग्रेजों की गड़गड़ाती हुई तोपों से विचलित हो उठा, किन्तु रानी ने अपने हाथ में सैनिक नेतृत्व लेकर जेनरल स्मिथ को दिखा दिया कि भारतीय नारियों में कितनी शक्ति और उत्साह होता है। इस प्रकार १७ जून १८५७ ई० को युद्ध में रानी की विजय हुई। किन्तु दूसरे रोज सर ह्यूरोज और स्मिथ ने अपनी अपार सेना के साथ पुनः आक्रमण किया। जिसमें रानी ने बड़ी धीरता से काम लिया और लड़ते-लड़ते अन्त में चारों ओर घिर गयी। इस प्रकार अपने को खतरे में देखकर रानी ने तलवार का आश्रय लिया और अङ्गरेज सैनिक गाजर मूली की तरह कट-कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। किन्तु भयानक एक गोली रानी के सीने में लगी और वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। बस, थोड़ी देर बाद ही भारत की आन-शान की संरक्षिका ने देव दूतों के साथ भारत की यह दुर्दशा बताने के लिये विष्णुलोक को गमन किया।

नाना साहब—सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्र संग्राम में नाना साहब का नाम बड़ा महत्त्व रखता है। अन्तिम पेशवा बाजी राव ने इन्हें दत्तक पुत्र बनाया था। पहले वर्णन किया जा चुका है कि बाजी राव द्वितीय अंग्रेजों की कठपुतली था। यही कारण था कि वह ८ लाख वार्षिक पेन्शन लेकर बिठूर (कानपुर के पास स्थान है) में विलासी जीवन यापन करता था। इसी समय नाना साहब को अच्छी तरह शिक्षा दी गई और यह भी प्रारम्भिक अवस्था में अंग्रेजों के बड़े भक्त थे। किन्तु सन् १८५१ ई० में बाजीराव की मृत्यु के बाद डल-हौजी ने और सब पेन्शन बन्द कर दी, केवल ६२ हजार रुपया नाना साहब को देना चाहा। इसे अपमान समझकर नाना साहब ने रुपया नहीं लिया और इस अन्याय की अपील इंगलैण्ड तक की, किन्तु कुछ उत्तर नहीं मिला!

इसके बाद अंग्रेजों की इस धूर्त्तता का जवाब देने के लिये नाना साहब ने योजना बनाई। सर्व प्रथम उन्होंने अपने निकटवर्त्तियों को अपनी योजना कार्यान्वित करने का आदेश दिया, जिसमें पदच्युत नवाब, राजा, और सैनिक कर्मचारी थे। मन्दिरों, मस्जिदों एवं अन्य पूजा-पाठ आदि स्थानों पर गुप्तरूप से विदेशी सरकार के प्रति कटु भावना पैदा करने के लिये भाषण आदि का प्रबन्ध किया। उस समय के वक्ताओं में मौलवी अहमद शाह का नाम बड़े आदर से लिया जाता था, जो फैजाबाद का एक बड़ा जमीदार था। इसके भाषण की शैली इतनी उत्तेजनात्मक होती थी कि निरुत्साहियों, भीरुओं एवं निर्बल व्यक्तियों में भी कुछ करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती थी। नाना साहब को सहयोग देना प्रायः सबने स्वीकार कर लिया। अन्त में ३१ मई सन् १८५७ ई० विप्लव का दिवस निश्चित किया गया। इस आन्दोलन को पूर्ण सफल बनाने के लिये नाना साहब और उनके सहयोगियों ने प्रायः भारत के प्रमुख नगरों में गुप्तरूप से भ्रमण किया।

नाना साहब के अथक परिश्रम से यह आन्दोलन ४ जून की अर्द्ध-रात्रि को कानपुर से आरम्भ हुआ। शीघ्र ही दूसरे दिन सरकारी कार्यालयों पर देशभक्तों का अधिकार हो गया। ६ जून को नाना साहब ने जेनरल ह्वीलर को किला सौंपने का अन्तिम आदेश दिया, जिसकी उसने अवेहलना की। फल यह हुआ २१ दिन तक निरन्तर किले पर गोलाबारी की गई, जिससे घबराकर ह्वीलर ने आत्म समर्पण कर दिया। सारा खजाना, अस्त्र-शस्त्र एवं अन्य वस्तुएँ नाना साहब के हाथ लगीं। इस किले पर २७ जून को बहादुर शाह के नाम पर हरा झण्डा फहराया गया और १०१ तोपों की सलामी दी गयी। इसके बाद सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नाना साहब पेशवा घोषित किये गये। इसके बाद फतेहपुर पर आक्रमण किया गया, किन्तु परिस्थिति वश नाना साहब की सेना को पीछे हटना पड़ा। इसके बाद १० जुलाई को विशाल सेना के साथ हैवलाक ने कानपुर पर आक्रमण किया,

जिसका स्वयं नाना साहब ने डटकर सामना किया, किन्तु परिस्थितियों ने उन्हें १७ जुलाई को पीछे हटने के लिये बाध्य कर दिया। इसके बाद झाँसी की रानी वहाँ आ पहुँची और उसने अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया। किन्तु दुर्भाग्यवश अंग्रेजों की विजय हुई। नाना साहब कहा जाता है कि अपने अनेक सहयोगितों के साथ नेपाल की ओर भाग गये। इसके बाद उनका क्या हुआ कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना अवश्य ठीक है कि उनके सहयोगियों में तात्याटोपे ने अनेक स्थानों पर इसके बाद भी अङ्गरेजों का सामना किया। अन्त में तात्याटोपे को अपने ही किसी भारतीय के विश्वासघात से अङ्गरेजों द्वारा फाँसी पर लटकना पड़ा। इस प्रकार स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध की पूर्णाहुति हुई।

अभ्यास

[क] प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध (सन् १८५७ ई०) के मुख्य कारणों से आप क्या समझते हैं? उन पर विस्तृत प्रकाश डालिये।

[ख] प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के मुख्य केन्द्र कौन थे? और अन्त में इस संग्राम का उन पर क्या प्रभाव पड़ा? स्पष्ट उत्तर दो।

[ग] इस स्वतन्त्रता संग्राम के असफल रहने के कारणों का सामान्य परिचय दो।

[घ] झाँसी की रानी का चरित्र चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिये कि वे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में अद्वितीय थी।

[ङ] क्या यह सच है कि नाना साहब ही १८५७ ई० के संग्राम के जन्मदाता थे? युक्तियुक्त उत्तर दो।

—०—

अष्टादश खण्ड

अंग्रेजी शासन का प्रारम्भ

विक्टोरिया और नवजागरण—प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राज्य सत्ता को समाप्त कर दिया। इसके बाद साम्राज्ञी विक्टोरिया की छत्रछाया में भारत का भाग्य सितारा चमकने लगा। विक्टोरिया ने भारत पर इंगलैण्ड की पार्लियामेन्ट का शासन होने पर भारतीयों की सुख सुविधा के लिये जो घोषणा की उसे हम पिछले खण्ड में पढ़ चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि घोषणा पत्र जो साम्राज्ञी की ओर से इलाहाबाद में घोषित किया गया था, वह बड़ा चित्ताकर्षक और भारतीयों की दृष्टि से बड़ा लाभदायक था। किन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि उसे पूर्णरूप से यहाँ के अधिकारियों ने चरितार्थ नहीं किया। भारत पर सीधा अंग्रेजी राज्य होने पर सर्व प्रथम लार्ड कैनिंग यहाँ आये। वह कम्पनी के अन्तिम गवर्नर जनरल और इंगलैण्ड के शासक की ओर से प्रथम वाइसराय थे। निःसन्देह ये बड़े दयालु शासक थे। प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध में भाग लेने वाले लोगों के साथ भी इनका अच्छा बर्ताव था। यही कारण है कि अंग्रेज लोग व्यंग्य से इन्हें 'दयालु कैनिंग' कहते थे। लार्ड कैनिंग ने विक्टोरिया की घोषणानुसार ये सुधार किये (१) सैनिक सुधार सेना का नवीन ढंग से निर्माण किया गया, जिसमें अंग्रेजों की संख्या बढ़ा दी गयी। (२) बंगाल भूमि कानून—बंगाल में जमीदार मन माने ढंग से कृषि कर लेते थे जिसे १८५९ ई० में कानून बनाकर कैनिंग ने कृषकों की दशा सुधार दी। (३) दण्ड विधान—१८६० ई० में लार्ड मैकाले द्वारा रचित दण्ड विधान में सरलता कर दी गयी, (४) हाई कोर्ट—बम्बई, कलकत्ता, और मद्रास में हाईकोर्ट स्थापित किये गये। (५) आर्थिक सुधार—

कम्पनी की आर्थिक दशा भारत के प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध ने कमजोर कर दी थी, जिसके सुधार के लिये कुछ कर और लगाये गये। (६) इण्डियन कौंसिल ऐक्ट—इस ऐक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी सभा में भिन्न-भिन्न विभाग कर दिये गये; जिससे कार्य अधिक सुगमता से होने लगा। इस ऐक्ट के अनुसार बंगाल, बम्बई तथा मद्रास के प्रान्तों को नियम निर्माण करनेका अधिकार मिल गया। इस प्रकार स्थानीय स्वशासन के अधिकार भी भारतीयों को मिलने लगे। साम्राज्ञी विक्टोरिया के समय क्रम से भारत के ये लोग वाइसराय बने—लार्ड कैनिंग, लार्ड एल्गिन प्रथम, सरजानलारैंस, लार्ड मैयो, लार्ड नार्थ ब्रुक, लार्ड लिटन, लार्ड रिप्पन, लार्ड डफ्रिन-इसके शासन काल में १८८५ ई० में भारतीय कांग्रेस का जन्म हुआ, लार्ड लैन्सडौन, एल्गिन द्वितीय, लार्ड कर्जन—इसके शासन काल में ही विक्टोरिया की १९०१ ई० में मृत्यु हो गयी। सम्राज्ञी के मरने के बाद उसका पुत्र एडवर्ड सप्तम ने इंगलैण्ड की राज्य गद्दी सम्भाली। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि साम्राज्ञी विक्टोरिया का शासन काल पर्याप्त सुविधाओं का काल था। साम्राज्ञी बड़ी योग्य, दयालु, कार्यकुशल एवं राजनीतिज्ञ थी। यही कारण है कि आज भी हम उसे सदैव याद करते हुए कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

सामाजिक नवजागरण—संसार का यह नियम है जब मानव का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं बौद्धिक ह्रास होने लगता है तो कुछ ऐसी विभूतियों का प्रादुर्भाव होता है, जो अपने तन-मन-धन से समाज सुधार में जुट जाती हैं। यही दशा भारतीय मानव समूह की १८ वीं शताब्दी के अन्त में और १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में दृष्टिगोचर हुई। सर्वत्र पराधीनता के कारण समाज में बाल विवाह, कन्या विक्रय, बहु विवाह, सती प्रथा, छुआ छूत आदि के विषय में कट्टरता ने पैर जमा लिया। इधर धार्मिक अवस्था में लोगों ने अपनी प्राचीन परम्परा का परित्याग कर दिया था।

पाखण्ड, प्रेत पूजा, अन्ध विश्वास एवं कट्टरता को सर्वत्र आदर दिया जाता था। ईसाई पादरी बड़े जोर-शोर से निर्धन और नीच समझे जाने वाले हिन्दुओं को अपने धर्म में मिला रहे थे। शिक्षा की दशा बड़ी दयनीय थी। स्त्रियों को शिक्षा देना पाप समझा जाता था। लोगों को अरबी फारसी और अङ्गरेजी के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। संस्कृत का पठन-पाठन केवल घरेलू था। लोग हिन्दी को बड़ी उपेक्षा दृष्टि से देखने लगे थे। भारतीयों की यह दुर्दशा देखकर सर्व प्रथम १७७४ ई० में राजा राममोहन राय और इसके बाद महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द का हृदय बड़ा दुःखी हुआ और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इस दुर्दशा से भारतीयों को छुटकारा दिलाकर हम पुनः भारत को भारत बनायेंगे। बस, थोड़े ही दिनों में इन महान् विभूतियों के प्रभाव से भारतीयों में जागृति के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। आज की स्वतन्त्रता का श्रेय भी इन्हीं विभूतियों को दिया जा सकता है।

राजा राममोहन राय—इनका जन्म बंगाल के हुगली जिले के कृष्ण नगर में एक सम्भ्रान्त कुल वाले रमाकान्त राय के घर १७७४ ई० में हुआ। इनकी माता का नाम तारिणी देवी था। उस समय की प्रथानुसार इनका विवाह बाल्यावस्था में हुआ। संस्कृत, अरबी और फारसी के अध्ययन के बाद २१ वर्ष में इन्होंने अङ्गरेजी भाषा का अध्ययन प्रारम्भ किया। राजा राममोहन राय के धार्मिक विचार बड़े सुलझे हुए थे। वेद और उपनिषदों के अध्ययन से उनकी आँखें खुल गयी थीं। उनका पक्का विश्वास था कि ईश्वर एक है। परस्पर झगड़ने वाले धर्मावलम्बियों में उन्हें एकता ही मालूम पड़ती थी। धार्मिक सहिष्णुता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के आधार पर उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। इस समाज के प्रचार के लिये उन्होंने अनेक पुस्तकें भिन्न भाषाओं में लिखीं, जिनका अध्ययन करने से

पता चलता है कि उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। समाज सुधारकों में उनका विशेष स्थान हैं। इनका सबसे महत्त्वशाली कार्य सती प्रथा बन्द करना था। उस समय भारत में सती प्रथा थी विशेष कर बंगाल में। राजाराममोहन राय इस प्रथा को बचपन से ही बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे। कहा जाता है कि उनके बड़े भाई की मृत्यु होने पर उनकी भावज को लोगों ने बलात् सती होने के लिये बाध्य किया। इस दृश्य को देख कर इस महापुरुष ने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मैं अवश्य इस प्रथा का अन्त करके रहूँगा। बड़े संघर्ष के बाद इनकी प्रेरणा से लार्ड विलियम बैन्टिक न इस प्रथा के विरुद्ध कानून बना दिया। इस कानून के पास होते ही असंख्य नारियों की प्राण रक्षा होने लगी। शिक्षा प्रसार के लिये उन्होंने अनेक जगह विद्यालय खुलवाये जिनमें अङ्गरेजी माध्यम से अध्ययन कराया जाता था। अङ्गरेजी माध्यम की उस समय राजाराममोहन राय बड़ी आवश्यकता समझते थे। शिक्षा प्रसार के अतिरिक्त राजनैतिक कार्य में भी उन्होंने भाग लिया। सन् १८२३ ई० में अङ्गरेजी शासक की ओर से सूचना निकली कि कोई भी समाचार पत्र बिना राज्य की आज्ञा के प्रकाशित नहीं हो सकता। समाचार पत्रों की इस परतन्त्रता पर इन्होंने आन्दोलन किया और राजनैतिक क्षेत्र में आदर प्राप्त किया।

दिल्ली के अन्तिम सम्राट अकबर द्वितीय ने सन् १८३० ई० में अपनी प्रार्थना सम्राट के पास राजाराम मोहन राय द्वारा पहुँचायी थी। वहाँ पहुँचने पर इनकी बड़ी आवभगत हुई और यह अपने कार्य में सफल भी हुए। वहाँ जाकर इन्होंने भारतीयों की वास्तविक स्थिति का लोगों को ज्ञान कराया। इंगलैंड की अनेक संस्थाओं ने यथोचित आदर किया। किन्तु अत्यधिक परिश्रम करने से यह बीमार पड़े और सितम्बर सन् १८३३ ई० में ब्रिस्टल स्थान पर विश्राम के लिये गये। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद २७ सितम्बर सन् १८३३ ई०

में अचानक इनका अन्तकाल हो गया। इनके शव पर आज भी वहाँ एक समाधि मन्दिर बना हुआ है। सचमुच राजाराम मोहन राय भारत की एक महान् विभूति थे।

महर्षि दयानन्द—यह दूसरी विभूति है जिसने उस समय के जगत् प्रवाह को बड़ी शक्ति से मोड़कर संसार को दिखा दिया कि एक दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति सब कुछ कर सकता है। इस विभूति का जन्म सन् १८२४ ई० में गुजरात के टंकारा स्थान पर हुआ। इनका जन्मनाम मूलशंकर था, जो बाद में स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से संसार के सामने आये। इनके माता पिता पक्के पौराणिक थे। एक बार शिव रात्रि के दिन घटना विशेष ने इनके विचारों में उथल-पुथल मचा दी और ये सच्चे गुरु की खोज करने के सोच में लगे। अन्त में इसीलिये इन्होंने १९ वर्ष की अवस्था में घर छोड़ दिया। मथुरा में स्वामी विरजानन्द सरस्वती को पाकर ये बहुत प्रसन्न हुए और वहाँ चिरकाल तक उनके पास रहकर इन्होंने अध्ययन किया। इधर प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध के दमन के बाद लोग आत्मविश्वास और धैर्य खो कर रूढ़ियों में फँस गये थे। यह दशा देखकर स्वामी दयानन्दजी घबरा उठे और समाज की कुरीतियों के विनाश के लिये डट गये। अपने कार्य को सुचारु ढंग से चलाने के लिये उन्होंने सन् १८७५ ई० में सर्वप्रथम बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की और बाद में सन् १८७७ ई० में लाहौर में आकर उसका प्रचार किया।

अपने कार्य में अनवरत कार्य करने वाले महर्षि दयानन्द को उस समय की सब कुरीतियों के विनाश में सफलता मिली। विधवाओं की स्थिति सुधार के लिये उन्होंने सर्वत्र विधवाश्रम खोले और अनाथों की रक्षा के लिये अनाथालय। जाति-पाँति, ऊँच-नीच, सवर्ण-असवर्ण के भेद-भाव को वे निरर्थक समझते थे। अछूत बन्धुओं की दशा सुधारने में उन्होंने पूरा प्रयास किया। वेदों में उनको पूर्ण आस्था थी, क्योंकि वे अन्तिम साँस तक वेदों का प्रचार करते रहे। मूर्ति

पूजा, अनेकेश्वरवाद, श्राद्ध एवं अवतारवाद की उन्होंने बड़ी कड़ी आलोचना की। ईसाई धर्म प्रचारक और मुस्लिम धर्म समर्थक उनके तर्कों के सामने टिकने का साहस न करते थे। संस्कृत प्रचार के लिये उन्होंने जगह जगह पर गुरुकुलों की स्थापना करवायी। संस्कृत के समर्थक होते हुए भी उन्होंने समय गति पहचानते हुए हिन्दी में अपने विचार व्यक्त किये। यही कारण है कि उनके विचारों का पुलिन्दा 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी में ही है। स्वदेश प्रेम उनमें कूट कर भरा हुआ था। यह सत्य है कि स्वामी दयानन्दजी ने अपने समय में जो जो कार्य किये उसके लिये आज हिन्दू समाज उनका ऋणी है। किन्तु ऐसी त्यागमयी मूर्ति का अन्त धोखे से दी गयी विष से ३० अक्टूबर सन १८८३ ई० में हुई, जो वस्तुतः भारतीयों पर कलंक का टीका है।

राजनैतिक जागरण—समाज सुधारकों ने अपने अथक परिश्रम से लोगों में ऐसी भावना भर दी थी कि लोग अब अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान करने लगे थे। राजाराममोहन राय के परिश्रम से लोगों ने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन कर उसकी कूटनीति का पर्याप्त ज्ञान कर लिया था। पाश्चात्य शिक्षा से शिक्षित सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे विद्वान को आई० सी० एस० परीक्षा पास करने पर भी नौकरी न देने पर लोगों में अंग्रेजों के प्रति कटुता के भाव पैदा कर दिये। अब लोग प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध भाषण देने लगे थे, यह आन्दोलन देखकर कुछ अङ्गरेज कर्मचारी भी भारतीयों से सहानुभूति प्रकट करने लगे थे। भारतीयों के पक्ष का समर्थन करने वाले अङ्गरेजों में ह्यूम, जान ब्राइट, हेनरी फासेट, चार्ल्स ब्राडला का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इधर दादा भाई नौरोजी के परिश्रम से सन १८८५ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

इंडियन नेशनल कॉंग्रेस—१८८५ ई० में इण्डियन नैशनल कांग्रेस भारतवर्ष की सबसे बड़ी राजनैतिक सभा है, जिसमें भारत

की सब जातियाँ सम्मिलित हैं। इसके संचालक कई एक पढ़े-लिखे भारतीय तथा अङ्गरेज थे। जिनमें से मिस्टर ए० ओ० ह्यूम का नाम विशेषतया स्मरणीय है। इस कांग्रेस का सम्मेलन प्रतिवर्ष भारत के किसी नगर में होता है। इसका प्रथम सम्मेलन १८८५ ई० में बम्बई में मिस्टर डब्ल्यू० सी० बनरजी के सभापतित्व में हुआ था।

आरम्भ में तो कांग्रेस की माँगें ये थीं कि नियम-निर्माण सभाओं को विस्तृत किया जाय और उनमें भारतीय-अधिक संख्या में लिये जायें, भारतवासियों को उच्च पदों पर अधिक संख्या में लिया जाये और सेनाओं के व्यय कम किये जायें। उस समय गवर्नमेंट का व्यवहार भी कांग्रेस की ओर सहानुभूतिपूर्ण था, परन्तु धीरे धीरे गवर्नमेंट का व्यवहार बदलता गया और कांग्रेस का दृष्टिकोण भी बदलता गया। सन् १९१९ ई० में पंडित जवाहरलाल जी के नेतृत्व में लाहौर काँग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया। इसके पश्चात् काँग्रेस में कई उतार-चढ़ाव आये। अन्ततः काँग्रेस के कार्य-कलाप और कई और कारणों से विवश होकर १५ अगस्त सन् १९४७ ई० को अङ्गरेज़ी सरकार ने भारत को स्वतन्त्र कर दिया और इस तरह काँग्रेस अपने उद्देश्य में सफल हुई। अब काँग्रेस के सामने देश की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति का कार्यक्रम है।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक—तिलक का जन्म १३ जुलाई १८५६ ई० को रत्नगिरि (कोंकण प्रान्त) में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम गंगाधर रामचन्द्र तिलक और माता का नाम पार्वती बाई था। संस्कृत व्याकरण की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर आप दस वर्ष की अवस्था में स्कूल में प्रविष्ट हुए। अंग्रेज हेडमास्टर से मतभेद हो जाने के कारण आप तब तक स्कूल नहीं गये जब तक हेडमास्टर का तबादला न हो गया। १८७२ में मैट्रिक पास कर क्रमशः वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् १८८० में तिलक ने पूना में इंगलिश स्कूल की स्थापना की। इसका परिणाम पहले वर्ष ही ऐसा उत्तम रहा कि सारे प्रान्त में धाक जम गई। १८८४ ई० में आपने डेकन सोसाइटी की स्थापना की, जिसके प्रयत्न से फर्ग्युसन कालेज की स्थापना हुई। १८८१ में उन्होंने 'केसरी तथा मरहठा' नामक पत्र निकाले, जो शीघ्र ही जनता के सर्वप्रिय हो गये। इन्होंने कोल्हापुर राज्य की खरी आलोचना की, जिससे दोनों सम्पादकों को चार-चार मास का कठोर कारावास हुआ।

१८९५ में तिलक बम्बई कौंसिल के सदस्य चुने गये, जहाँ आपने सदैव लोक-मत का समर्थन किया। १८९६ के दुर्भिक्ष में आपने जनता की बड़ी सहायता की। सस्ते अन्न की दुकानें खुलवाईं और किसानों का लगान माफ करवाया। उसी समय फैले हुए प्लेग में भी आपने जनता की बड़ी सहायता की। स्थान-स्थान पर क्वेरण्टाइन खोले गये। इस समय किये गये पुलिस के अत्याचारों की आपने कड़ी निन्दा की। स्त्रियों के सतीत्व तक नष्ट होने पर चावेकर नामक व्यक्ति ने महामारी समिति के प्रधान मि० रैण्ड को मार डाला। सरकार ने समझा कि यह उत्तेजना 'मरहठा' और 'केशरी' पत्रों द्वारा ही हुई है। अतः तिलक को डेढ़ वर्ष की सजा हुई। इस जेल-जीवन में आपने 'औराइन' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रन्थ की पाश्चात्य विद्वानों तक ने बड़ी प्रशंसा की। मेक्समूलर ने इस ग्रन्थ से प्रभावित होकर महारानी विक्टोरिया के पास में तिलक की मुक्ति के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा, जिससे वे मुक्त हो गए। इसके पश्चात् तिलक पर 'ताई महाराज केस' चला, जिसमें भी आप निर्दोष सिद्ध हुए।

१८९५ से १९०४ तक आप काँग्रेस के उग्र दल के नेता रहे। आपने लार्ड कर्जन की उस नीति का विरोध किया जिसके द्वारा वे विश्वविद्यालयों को सरकार को ही सौंपना चाहते थे। बंगभंग

आन्दोलन में भी आपने बड़ा काम किया, जिसके कारण आपको ६ वर्ष का कठिन कारावास तथा १०००) रु० जुर्माने का दण्ड मिला। इस बार आप मांडले जेल में रखे गये, जहाँ आपने 'गीता रहस्य' नामक अद्भुत ग्रन्थ की रचना की। आपके जेल जीवन में ही आपकी पत्नी की मृत्यु हो गई, जिस शोक को आपने बड़े धैर्य के साथ सह लिया।

जेल से मुक्त होने पर आपने एनीबीसेन्ट द्वारा चलाये गये 'होम रूल' आंदोलन में पूरा भाग लिया, जिसके कारण आपसे बीस-बीस हजार की जमानतें माँगी गईं। अपील करने पर तिलक निर्दोष सिद्ध हुए और जमानतें रद्द हो गईं।

तपस्वी तिलक का सारा जीवन देश-प्रेम में बीता। जेल में भी आप अकर्मण्य होकर नहीं बैठे। कठिन परिश्रम के कारण आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। ज्वर आने पर अनेक उपद्रव बढ़ गये, जिसके कारण ३१ जुलाई १९२० को सरदार-गृह बम्बई में आपकी मृत्यु हो गई।

गोपाल कृष्ण गोखले—गोपालकृष्ण गोखले भारत के एक सच्चे देश भक्त तथा कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता थे। उनका जन्म १८६६ ई० में एक ब्राह्मण मराठा घराने में हुआ। कुछ समय तक वे फरगुसन कालिज पूना में प्रोफेसर रहे। वे अपने समय के बड़े योग्य नीतिज्ञ थे और गवर्नमेंट तथा जनता दोनों आपकी योग्यता को मानते थे। गोखले गवर्नर-जनरल की नियम-निर्माण कौंसिल के सदस्य भी रहे और वहाँ उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य स्वीकृत किये जाने के लिये एक बिल पेश किया, परन्तु यह बिल पास न हो सका। गोखले उच्च कोटि के वक्ता थे और उनके भाषणों में जादू का सा प्रभाव था। १९०५ ई० में उन्होंने पूना में सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना की जो आज तक भी है। १९१५ ई० में उनकी मृत्यु हो गई।

महात्मा गांधी—सन् १९३६-४८ ई० में महात्मा गांधी जिन्हें लोग श्रद्धा से 'बापू' के नाम से याद करते हैं, जगद्-विख्यात व्यक्तियों में से थे। आप भारतवर्ष को स्वतन्त्र कराने वाले तथा सत्यता और अहिंसा के पुजारी थे। आपका जन्म २ अक्टूबर १८६९ ई० में काठियावाड़ के एक नगर पोरबन्दर में एक प्रतिष्ठित बनियाँ घराने में हुआ था। आपका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था। आपके पिता और दादा काठियावाड़ की एक छोटी सी रियासत के दीवान थे। मैट्रीकुलेशन की परीक्षा पास करने के पश्चात् आप शिक्षा के लिये इङ्गलैण्ड चले गये और वहाँ से बैरिस्टर बन कर आप बम्बई हाई कोर्ट में प्रैक्टिस करने के लिये वापस आए, परन्तु आपको कोई विशेष सफलता प्राप्त न हुई।

१८९३ ई० में एक अभियोग के लिये आपको दक्षिणी अफरीका जाना पड़ा। आप गये तो वहाँ एक वर्ष के लिये थे, परन्तु वहाँ बीस वर्ष रहे। आपने वहीं प्रैक्टिस आरम्भ कर दी और जब आपने वहाँ भारतवासियों के साथ दुर्व्यवहार होते देखा तो सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। आप वहाँ तीन बार कैद भी हुये और आपने बड़ी ख्याति प्राप्त की।

१९१४ ई० में आप भारतवर्ष लौट आये, उन दिनों प्रथम महायुद्ध हो रहा था। आपने इस युद्ध में अङ्गरेजी सरकार की बड़ी सहायता की, परन्तु जब युद्ध की समाप्ति पर रौलेट ऐक्ट पास हुआ तो आपने भारतवर्ष में सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर दिया। फिर पंजाब के अत्याचारों तथा खिलाफत के प्रश्न के कारण असहयोग आन्दोलन प्रचलित किया और थोड़े से वर्षों में ही आप लोकप्रसिद्ध हो गये।

इसके पश्चात् लगभग ३० वर्ष का काल महात्मा गांधी का ही युग था। आप सारे देश की राजनीति पर छाये हुए थे। आपने केवल अहिंसा और सत्यता के बल पर अपने देश को स्वतन्त्र कराने

के लिये संसार की सबसे बड़ी शक्ति बर्तानवी साम्राज्य के साथ युद्ध किया और कई उतार चढ़ाओं के पश्चात् १५ अगस्त १९४७ ई० को अपने देश को स्वतन्त्र कराने में सफल हो गये। आप ऐसा भारतवर्ष देखना चाहते थे जिसमें धनी और निर्धन में कोई भेद न हो, जिसमें सब मत-मतांतरों के अनुयायी शान्ति पूर्वक रह सकें, जिसमें पुरुषों तथा स्त्रियों के अधिकार समान हों, जिसमें छूतछात का चिन्ह तक न हो, जिसमें नशीली वस्तुओं का प्रयोग वर्जित हो, परन्तु आयु ने साथ न दिया। ३० जनवरी १९४८ ई० को देहली में आपका वध कर दिया गया। आपके वध पर सारे संसार में घोर शोक मनाया गया। लार्ड मौण्टबैटन ने आपकी मृत्यु पर कहा था कि भारत वस्तुतः सारा संसार उस प्रकार के मानव को नहीं देख सकेगा।

पंडित जवाहरलाल नेहरू—पण्डित जवाहरलाल नेहरू आजकल स्वतन्त्र भारत के महान मंत्री और एक उच्च-कोटि के माननीय व्यक्ति हैं। आप स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू के सुपुत्र हैं। आप का जन्म सन् १८८९ ई० में हुआ। इंगलैंड से आपने बैरिस्ट्री की परीक्षा पास की। इंगलैंड में रहते हुए ही आप के दिल में देश की स्वतन्त्रता की तड़प उत्पन्न हो गयी थी। अतः वहाँ से लौटने के पश्चात् शीघ्र ही आपने राजनैतिक कार्यों में भाग लेना आरंभ किया और थोड़े से समय में ही आप बहुत प्रसिद्ध हो गये। सन् १९२९ ई० में आप लाहौर कांग्रेस के सभापति बने, जिसमें 'सम्पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव पास हुआ। आप की बुद्धि अनुपम है और आपका बलिदान भी अद्वितीय है।

देश और जाति के लिये आपको कई बार जेल-यात्रा करनी पड़ी। आप काँग्रेस के चोटी के नेता हैं और जनता की आप में अत्यन्त श्रद्धा और ममता है। आप १९३६-३७ ई० में भी कांग्रेस के प्रेजिडेन्ट रहे। आप एक लोक-प्रसिद्ध लेखक भी हैं। आजकल स्वतन्त्र भारत के प्रधान मंत्री हैं और आप की गणना संसार के उच्चकोटि के राज-

नीतिज्ञों में की जाती हैं १७ अक्टूबर १९४९ ई० में अमरीकी कोलम्बिया यूनिवर्सिटी ने उन्हें एल० एल० डी०की डिगरी प्रदान की। आज विश्व की शान्ति-स्थापन में जो पंडित जी का स्थान है, उसे संसार का प्रत्येक मानव जानता है। थोड़े दिन पूर्व उन्हें भारतरत्न की उपाधि डा० राजेन्द्र प्रसादजी की ओर से प्रदान की गयी है। अपने इस प्रधान मन्त्री के लिये हम भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह दीर्घायु हों।

सरदार पटेल—सरदार पटेल स्वतन्त्र भारत के डिप्टी महामन्त्री और रियासती विभाग के प्रधान थे। आप वर्तमान समय में भारत के एक श्रेष्ठ और अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे। आपका जन्म सन् १८७५ ई० में गुजरात के एक माननीय किसान वंश में हुआ था। आप उच्चकोटि के वकील थे, परन्तु कुछ वर्षों के बाद आप वकालत छोड़कर कांग्रेस में शामिल हो गये। सन् १९३१ ई० में आप कराची कांग्रेस के प्रधान थे। भारत की रियासतों को भारत सरकार के साथ सम्बन्धित करके भारत की एकता को सुदृढ़ करना आपकी योग्यता का स्पष्ट प्रमाण है। आपका यह कार्य अद्वितीय है।

मिस्टर जिन्ना—मिस्टर मुहम्मदअली जिन्ना पाकिस्तान के पहले गवर्नर जनरल थे। आप १८७६ ई० में कराची में उत्पन्न हुए। बैरिस्ट्री पास करने के पश्चात् आपने बम्बई हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करनी आरम्भ कर दी। आप एक अत्यन्त सफल बैरिस्टर तथा असाधारण योग्यता के राजनीतिज्ञ थे। मुसलमानों के आप एक उच्चकोटि के नेता थे और कायदे-इ-आजम की उपाधि से विख्यात थे। आप पहले कांग्रेस के एक प्रसिद्ध सदस्य थे, परन्तु बाद में कांग्रेस को त्याग मुस्लिम लीग में सम्मिलित हो गये। आप आल इण्डिया मुस्लिम लीग के प्रधान थे और आप पाकिस्तान की जान थे। ११ सितम्बर १९४८ को रात के लगभग १० बजे हृदय की गति रुक जाने से आपकी मृत्यु हो गई।

श्री सुभाषचन्द्र बोस—श्री सुभाषचन्द्र बोस 'आजाद हिन्द सेना' के जन्मदाता और सच्चे देशभक्त थे। आपकी जन्मभूमि बंगाल प्रांत है। आप १८९७ ई० में उत्पन्न हुए। १९२० ई० में आपने आइ. सी. एस. की परीक्षा पास की। परन्तु आप लण्डन में ही थे कि आपने उस पद से त्याग पत्र दे दिया और आपने अपने आपको देश सेवा के लिये अर्पण कर दिया। इस देश सेवा के कारण आप कई बार कैद भी हुए। सन् १९३० ई० में आप कलकत्ते के मेयर चुने गये और १९३८ ई० में आप कांग्रेस के सभापति चुने गये और १९४१ ई० में आप अपने घर में ही कैद किये गये, परन्तु ऐसी चतुराई से वहाँ से आप निकले कि सरकार को पता भी न लगा कि कब गये और कहाँ गये। मलाया में आपने आजाद हिन्द सेना की रचना की जो सेना अंग्रेजों के विरुद्ध देश स्वतन्त्रता के लिये लड़ती रही। कहते हैं कि १९४५ ई० में हवाई जहाज की दुर्घटना में आपकी मृत्यु हो गई। (यद्यपि कई लोगों का विचार है कि आप अभी तक जीवित हैं)। आपकी गणना संसार भर के उच्चकोटि के वक्ताओं में की जाती है। आजाद हिन्द सेना के सैनिक आपका ऐसा मान करते थे जैसे नैपोलियन के सैनिक नैपोलियन का। वे उन्हें नाम लेकर याद नहीं करते, बल्कि नेता जी कहकर पुकारते हैं। आशा है कि इतिहास में आपकी गणना वीरों में होगी।

महामना मदन मोहन मालवीयजी—मदन मोहन मालवीयजी का जन्म २५ दिसम्बर १८६१ ई० को इलाहाबाद में हुआ था। आपके पिताका नाम पं० व्रजनाथ व्यास और माता का नाम मूनादेवी था। मालवीयजी के घर का ऐसा वर्ताव था कि वे बचपन में ही भारतीय संस्कृति के पक्के पुजारी बन गये। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद १८८४ ई० में बी० ए० पास करने के बाद आपने वकालत की परीक्षा भी १८९१ में पास करली। इसके बाद इलाहाबाद हाई कोर्ट में आपकी वकालत खूब चली, किन्तु सब छोड़ छाड़कर देश सेवा में

आप कूद पड़े। १९०२ ई० से लेकर १० वर्ष तक आप उत्तर प्रदेश की धारा सभा के सदस्य रहे। कांग्रेस में आप सदैव सक्रिय भाग लेते थे। यही कारण था कि आप १९०९ ई० में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और १९१० में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति पद को भी अलंकृत किया। इसके बाद कई वर्षों तक वायसराय की इम्पीरियल कौन्सिल के सदस्य भी रहे। १९१४ ई० में एनी बिसेण्ट द्वारा संचालित 'होमरूल' आन्दोलन में आपने खुल कर भाग लिया। इसके बाद आपने अपने अथक परिश्रम से हिन्दू विश्वविद्यालय का बिल पास कराकर १९१६ ई० को उसका शिलान्यास करवाया। आप सदैव निर्भीक भाव से अंग्रेजी सरकार की आलोचना करते थे। क्योंकि आपका विश्वास था कि देशी सरकार के बिना भारत-वासियों का कल्याण असम्भव है। सन् १९१८ ई० में मालवीयजी ने 'रौलट बिल' का बड़े जोरदार शब्दों में विरोध किया। यह रौलट बिल १९१९ ई० में पास हुआ था। उन देशभक्तों की आवाज दबाने के लिये जो भारत की स्वतन्त्रा की माँग करते थे। इस बिलको निष्फल बनाने के लिये मालवीयजी ने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में शान्तिपूर्वक सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया। इस आन्दोलन को समाप्त करने के लिये अंग्रेज सरकार ने कई स्थानों पर मार्शल-ला चालू कर दिया। १९१९ ई में जलियाँ वाला बाग की शान्त जनता पर बिना सूचना दिये जनरल डायर ने गोली चला दी, जिसमें हजारों व्यक्तियों को अकाल मृत्यु का शिकार होना पड़ा। इस समाचर से मालवीयजी बड़े दुःखी हुए और विदेशी सरकार को निकालने का प्रयत्न करने लगे। आपके भाषण में वह ओज था कि निरुत्साही व्यक्ति भी आपके कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने लगते थे। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आप जहाँ एक अच्छे वक्ता थे, वहाँ एक अच्छे पत्रकार भी। क्योंकि आपने हिन्दुस्तान, अभ्युदय और लीडर आदि समाचारों का सम्पादन बड़ी योग्यता से किया। कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की नीति से आपका कई बार विरोध हुआ। किन्तु समय पड़ने पर

आप कभी भी किसी देशभक्त से पीछे नहीं रहे। हिन्दू जनता की भलाई के लिये उन्होंने अन्तिमदम तक कार्य किये। अन्त में १९४६ ई० में नोआखाली में हुई हिन्दू जनता की दुर्दशा से दुःखी होकर हमारे महामना मदन मोहन मालवीयजी ने अपने यशः कार्य हिन्दू विश्व विद्यालय में ही अपने इस पार्थिव शरीर को छोड़कर स्वर्गारोहण किया।

एनी बिसेण्ट—विश्व बन्धुत्व का प्रचार करने वालों में एनी बिसेण्ट का नाम अपना विशेष महत्व रखता है। इस विभूति का जन्म १ अक्टूबर १८४७ ई० को इंगलैण्ड में हुआ। इनके पिता का नाम विलियम पेज वुड और माता का नाम एमिली था। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद २० वर्ष की अवस्था में ही आपका विवाह फ्रैंक बिसेण्ट नामक पादरी से हो गया। गार्हस्थ्य जीवन में सुख न देखकर धीरे-धीरे इन्हें ईसामसीह के विचारों से घृणा होने लगी। यही कारण था कि अन्त में आपने १८७४ ई० में चार्ल्स ब्रैडला के 'स्वतन्त्र विचारक संघ की' सदस्यता स्वीकार कर ली। नास्तिकवाद के प्रति आपकी रुचि कई वर्षों तक बनी रही। अन्त में आपको १८७८ ई० की भारतीय राजनीति ने अपनी ओर आकृष्ट किया। क्योंकि इस समय लार्ड लिटन भारतीय जनमाल के प्रयोग से अफगानिस्तान पर विजय पाना चाहता था, जिसकी आपने कड़ी आलोचना भी की। सन् १८८९ ई० में आपने मैडम ब्लावास्टकी के विचारों से प्रभावित होकर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। उनके मरने के बाद आपको ही थियासाफिकल सोसायटी की अध्यक्षता करनी पड़ी। इसके बाद सन् १८९३ ई० में आपने भारत में पदार्पण किया। लगभग ५ वर्ष तक आपने निरन्तर यहाँ भारतीय संस्कृति को जानने का प्रयास किया। अन्त में प्रभावित होकर आपने १८९८ ई० में बनारस के सेण्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की। कुछ दिनों बाद मालवीयजी के हिन्दू विश्वविद्यालय के स्वप्न को साकार बनाने के लिये यह कालिज एनी बिसेण्ट ने उनके हाथ ही

दे दिया। शिक्षा प्रसार में उनका बड़ा मन लगता था, यही कारण था कि वे मालवीयजी के साथ हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये दर-दर भीख माँगने गयीं। अपने पत्र 'न्यू इण्डिया' की ध्वनि से आपने भारतीयों में स्वराज्य की भावना को बल दिया और स्वयं भी १९१४ ई० में कांग्रेस की सदस्या बन गयीं। १९१६ ई० में आपने 'होमरूल लीग' की स्थापना की और वर्षों तक उसका नेतृत्व करते हुए भारत के लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे कर्मठ व्यक्तियों का समर्थन भी प्राप्त किया। आपके प्रचार पर रोक लगाकर बम्बई मध्यप्रदेश आदि प्रान्तशासकों ने वहाँ जाने की आपको आज्ञा तक नहीं दी। मद्रास सरकार ने तो आपको बन्दी तक बना लिया। अन्त में आपकी तपस्या का फल देने के लिये भारतीयों ने सर्वत्र आपकी मुक्ति का सफल प्रयास किया। जेलसे छूटने के बाद आप १९१७ ई० में कलकत्ता की कांग्रेस सभा की अध्यक्षा बनीं। 'राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड' की स्थापना करके आपने शिक्षा प्रसार में पर्याप्त सहयोग दिया। कांग्रेस कर्मचारियों से कभी-कभी मतभेद होने पर भी आप सदैव कांग्रेस का समर्थन ही करती थीं। यही कारण था कि आपने १९२८ ई० में साइमन कमीशन का डटकर विरोध किया। अन्त में आपने २० सितम्बर १९३३ ई० में भारत की पुण्यभूमि में अन्तिम साँस ली।

पञ्जाब केसरी लाला लाजपतराय—भारत माँ को परतन्त्रता से मुक्त करानेवाले वीर सेनानियों में लालाजी का नाम टिमटिमाते नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान है। इस कर्मठ आदर्शमूर्ति का जन्म जनवरी २८, १८६५ ई० को फिरोजपुर के एक छोटे से गाँव में हुआ था। आपके पिताजी का नाम लाला राधाकृष्ण था जो अपने समय के योग्य अध्यापकों में आदरणीय समझे जाते थे, इसलिये आपको अच्छी तरह शिक्षा दी गयी। आपके माता-पिता आर्य-समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों से प्रभावित

थे। यही कारण था कि आप भी आर्यसमाज के सदस्य बने और स्वामी दयानन्द की मृत्यु के बाद आपने १८८६ ई० में डी० ए० वी० कालिज लाहौर में खोला। समाज सेवा के भाव आप में कूट-कूटकर भरे हुए थे। उसी का फल था कि १८९६ ई० में जब पञ्जाब में भयंकर अकाल पड़ा तो आपने तन-मन-धन से घूम-घूमकर लोगों की सहायता की। सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के फलस्वरूप आपका परिचय गोखले, तिलक, महात्मागान्धी एवं महामना मालवीय जी से हुआ। महात्मा गान्धी के अफ्रीका सम्बन्धी आन्दोलन को सफल बनाने के लिये लालाजी ने यहाँ से ५०,००० रुपया चन्दा करके भेजा था। सन् १९१४ ई० में आपने इङ्गलैण्ड की यात्रा की और जापान भी गये। जब आप अभी विदेश में ही थे कि प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। आपको यहाँ आने की आज्ञा नहीं मिली। इसी लिये आपने अमेरिका जाकर भारतीयों की स्वतन्त्रता का प्रचार किया। प्रथम युद्ध समाप्त होने पर आप भारत लौटे और लोगों ने कलकत्ता कांग्रेस का सभापति चुनकर आपके प्रति आदर प्रकट किया। किन्तु पञ्जाब में प्रवेश करते ही १९२१ ई० में आप पकड़े गये। फलस्वरूप १८ मास की कड़ी सजा और ५०० रुपया जुर्माना आपको देना पड़ा। जेल से छूटने पर आप स्वराज्यपार्टी की ओर से असेम्बली के सदस्य चुने गये। असेम्बली में ही आपने सरकार द्वारा भेजे गये साइमन कमीशन का विरोध किया, क्योंकि उसमें एक भी भारतीय सदस्य न था। कमीशन जब लाहौर पहुँचा तो आपने काले झण्डों से केवल उसका स्वागत ही नहीं किया, अपितु 'साइमन गो बैक' की ललकार से कमीशन सदस्यों के हृदय में भय भी पैदा कर दिया। अंग्रेजी सरकार ने इसका उत्तर बर्बरता पूर्ण लाठी चलाकर दिया, जिसमें लालाजी को गहरी चोट लगी और वह कुछ दिनों बाद १७ नवम्बर १९२६ ई० में सदा के लिये चल बसे। उनके अन्तिम शब्द थे, 'यह एक-एक लाठी

अंग्रेजी सरकार के कफन के लिये एक-एक तागा और कील सि
होगी'। अन्त में हुआ भी यही कि अंग्रेजी सरकार को 'आ
रोने वाला भी भारत में कोई नहीं रहा।

असहयोग आन्दोलन—प्रथम, महायुद्ध में भारतीयों ने अंग्रेज
की दिल खोलकर सहायता की, क्योंकि उन्होंने युद्ध के बाद स्वतन्त्र
देने की प्रतिज्ञा की थी। युद्ध के भय से छुटकारा पाते ही स्वतन्त्
की तो कौन कहे इन फिरंगियों ने १९१९ ई० में रोलेट एक्ट
काले कानून बनाकर हमारी रही-सही स्वतन्त्रता को भी परत
का चोगा पहनाने का प्रयास किया। शान्तिमय उपायों से
करने पर भी हम भारतीयों को अंग्रेजों ने पञ्जाब अमृतसर के ज
वाला बाग में बड़ी निर्दयता से गोलियों का शिकार बनाकर महोत्
मनाया। इधर टर्की के बादशाह से इन अंग्रेजों ने ऐसी
स्वीकार करा ली कि उसका प्रभाव नाममात्र का रह गया।
कारण था कि मुस्लिम बन्धुओं में भी रोष की आग भड़क उठी
समय पाकर महात्मा गान्धी ने इन दोनों प्रधान जातियों के सहयो
से अंग्रेजों के विरुद्ध शान्तिमय असहयोग आन्दोलन १९२१
प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन के ये कार्य थे—(१) विदेशी वस्
का निषेध, (२) सरकारी नौकरियों का निषेध करना, (३
न्यायालयों का निषेध, (४) स्कूल और कालिजों का निषेध, (५
कौंसिलों का निषेध, (६) उपाधियों का निषेध। यह आन्दोल
चल ही रहा था कि लार्ड चैम्सफोर्ड के स्थान पर भारत के गवर्न
जनरल लार्डरैडिंग नियुक्त हुए। यह बड़ा चतुर व्यक्ति था। इस
आते ही हिन्दू मुसलमानों में भेद भाव की नीति का आश्रय लिया
इधर सब लोग महात्माजी के अहिंसात्मक सिद्धान्त का पालन
न कर सके और उन्होंने संयुक्त प्रान्त के गोरखपुर जिले के पास
चौरी-चौरा नामक स्थान के एक थाने को घेरकर एक थानेदार और
२१ सिपाहियों को जिन्दा जला दिया। इस समाचार से गान्धीज

े दुःखी हुए और उन्होंने २१ दिनों का उपवास करके इसका
ायश्चित्त किया और कुछ दिन के लिये असहयोग आन्दोलन को
क दिया। समय से लाभ उठानेवाले अंग्रेजों ने समय पाकर
ारत के लगभग सब प्रमुख नेताओं को बन्दी बना लिया। इस
कार कुछ दिन के लिये आन्दोलन समाप्त हो गया। किन्तु इस
न्दोलन ने लोगों को अपने अधिकारों के लिये निर्भीकतापूर्वक
आने की शक्ति अवश्य प्रदान की, जिसका आगे चलकर फल आज
जी हमारी स्वतन्त्रता है।

तीलाल नेहरू—पं० मोतीलाल नेहरू एक प्रतिष्ठित काश्मीरी
सदस्य थे। इनका जन्म ६ मई सन् १८६१ ई० को आगरे
आ। आपके पिता का नाम पं० गंगाधर नेहरू था, जो दिल्ली
कोतवाल थे। पिता की मृत्यु के बाद मोतीलाल नेहरू की
ा-दीक्षा का प्रबन्ध उनके बड़े भाई नन्दलाल नेहरू ने किया।
ावस्था में ही मोतीलालजी ने कई बार अपनी विलक्षण प्रतिभा
र स्मरण शक्ति से लोगों को चकित कर दिया था। १८८२ ई०
आपने एकाएकी परीक्षा पास की और इसके बाद वकालत की
क्षा में भी सबसे अधिक नम्बर लेकर पास की। वकालत पास
के कानपुर में इन्होंने कार्य आरम्भ किया, किन्तु शीघ्र ही
ाहाबाद के हाईकोर्ट में आ गये और अपनी धाक सब पर जमा
। मोतीलालजी के विषय में कहा जाता है कि उनके कपड़े
स से धुलकर आते थे, जिसका पं० जवाहरलालजी ने पूर्ण
डन किया है। यह ठीक है कि वे बड़े ठाठ-बाट से जीवन
ाते थे। उनके बलिदान के विषय में जितना भी कहा जाय
थोड़ा है, क्योंकि उन्होंने हमें एक ऐसा रत्न दिया जिसने आज
व में भारत का सम्मान ही नहीं बढ़ाया, अपितु भारत को विश्व
रंग मञ्च पर ले जाकर खड़ा कर दिया है। धन सम्पत्ति जिसकी
ी हो ऐसे व्यक्ति का स्वराज्य के लिये कूद पड़ना वस्तुतः आश्चर्य

का विषय है। १९१९ ई० में जलियाँवाला बाग की घटना जाँच करनेवाली समिति में भी आपने भाग लिया। की कारुणिक कहानियाँ और दृश्य देखकर मोतीलालजी धैर्य खो सबके सामने रो पड़े। इसके बाद इन्होंने प्रतिज्ञा की कि वि सरकार को उखाड़े विना मैं दम न लूँगा। यही कारण था अधिक रुपयों की आमदनी को लात मारकर ये स्वतन्त्र शामिल हो गये। गान्धीजी से कई एक ब... मतभेद इसलिये इन्होंने सी० आर० दास (चितरंजन दास) के मिलकर एक स्वराज्यपार्टी की स्थापना की। १९२९ ई० में लोकरक्षा बिल का विरोध करते हुए लार्डअरविन की घोषणा निरर्थक बताया। गान्धीजी के असहयोग आन्दोलन में लेकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाने वाले लोगों में आपका प्र स्थान है। अपनी सारी सम्पत्ति और इलाहाबाद का प्र 'आनन्द भवन' स्वराज्य प्रेमी कांग्रेस पार्टी को अर्पित कर अपने त्याग का अच्छा परिचय दिया। १९३० में आपको कां आन्दोलन में भाग लेने के फलस्वरूप जेल जाना पड़ा। आ दमा की शिकायत सदा रहती थी, जिसका प्रभाव जेल में अ हो गया और आप छोड़ दिये गये। किन्तु फरवरी ६ सन् १९ ई० में आपने इस संसार का परित्याग कर दिया। निःसन्दे मोतीलाल नेहरूजी का नाम भारतीय सदैव याद रक्खेंगे।

स्वतन्त्र भारत तथा भारत विभाजन—सन् १८८५ ई० में कांग्रे पार्टी की स्थापना हुई और वह निरन्तर अपने जन्म काल से ले भारतीयों के संगठन पर जोर देती आ रही है। यही कारण है कि पर्याप्त सफलता भी मिली। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये महात्मा गान् के नेतृत्व में हमने बहुत कुछ किया। सन् १९४० ई० में व्यक्ति आन्दोलन चलाया गया, जिसमें देशभक्त भारतीयों ने खूब सहयो दिया। इसके बाद जापान के भय से अंग्रेजी सरकार ने हमारे स

झौता करने के लिये अपने प्रतिनिधि क्रिप्स को भेजा। किन्तु
ं अंग्रेज सरकार की बातों पर भारतीयों को अब विश्वास न था,
लिये वह योजना ठुकरा दी गयी। जापान के आक्रमण के समय
रच वीर सुभाष की आजाद हिन्द फौज भी अपने देश की ओर
रही थी। क्रिप्स की योजना का असफल होना यह सिद्ध करता था
ंग्रेज न लोग भारतीयों को कुछ भी नहीं देना चाहते। इसके
द गान्धी जी ने सन् १९४२ ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन का
त्रपात किया। फलस्वरूप ९ अगस्त को सभी भारतीय नेता कारा-
र की शृङ्खलाओं में बन्द हो गये। अपने नेताओं के प्रति श्रद्धा
खाने वाली जनता और विशेषकर छात्र वर्ग ने न जाने कितने
ंग्रेजों को मानवता का सबक सिखाया और उनके बंगलों को अग्नि
व के हवाले किया। इधर जापान और जर्मनी के हारने के बाद
न् १९४५ ई० में शिमला में सम्मेलन बुलाया गया, किन्तु मिस्टर
जन्ना की पैंतरेबाजी ने इस सम्मेलन को सफल नहीं होने दिया।
इंगलैंड में मजदूर दल की सरकार बनते ही वहाँ के प्रधान मंत्री ने
भारत में चुनाव की घोषणा की जिसमें बहुमत कांग्रेस का रहा।
इसके बाद हारे हुए पक्ष ने बड़ा हल्ला किया और दंगे करना आरम्भ
किया। भारत में इस प्रकार की, अशान्ति देखकर इंगलैंड से एक
अमात्य मण्डल यहाँ आया, जिसमें भारत के सचिव—लार्ड पैथिक
लारेन्स, ए० वी० अलेक्जेण्डर एवं सर स्ट्रैफर्ड क्रिप्स थे। इस अमात्य
मण्डल ने देश के प्रत्येक दल से बातचीत की, किन्तु मुस्लिम पार्टी ने
अपने स्वार्थवश सब काम बिगाड़ दिया। इसके बाद वायसराय ने
नेहरू और मिस्टर जिन्ना को अन्तरिम सरकार बनाने के लिये कहा,
जिसे जिन्ना ने पूर्णरूप से अस्वीकार कर दिया। केवल अस्वीकार
ही नहीं किया, अपितु अपने सहयोगियों को सर्वत्र गुण्डा गर्दी और
मारकाट करने का संकेत भी किया। फलतः बहुमत मुस्लिम भागों
में हिन्दुओं को बड़ी बेरहमी के साथ मारा गया, जिनमें नोआखली

और ढाका का नाम विशेषरूप से लिया जा सकता है। इधर पं॰ में भी मुस्लिम लीग ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। देखा-देखी कुछ हिन्दू-सिक्ख भी अपनी रक्षा के लिये या बदला चुकाने के विचार से मैदान में उतर पड़े। इस दंगे में कितने लोग और कितनी सम्पत्ति नष्ट हुई उसकी कल्पना करना भी बुद्धि के बाहर की वस्तु है। उसी समय इंगलैंड के प्रधान मन्त्री एटली ने शान्ति स्थापनार्थ घोषणा की कि अङ्गरेजी सरकार जून सन् १९४८ ई॰ तक भारतीयों के हाथ सत्ता सौंप देगी। इस घोषणा को चरितार्थ करने के लिये वायसराय बनाकर माउण्टबेटन को भेजा। माउण्टबेटन ने आते ही ३ जून सन् १९४७ ई॰ को अपनी योजना लोगों के सामने रक्खी, जिसमें भारत विभाजन की रूपरेखा थी। पाकिस्तान में सिन्ध, ब्रिटिश बलोचिस्तान पश्चिमी पंजाब, पूर्वी वंगाल और सूबा आसाम के जिला सिलहट का अधिकांश भाग सम्मिलित किये गये और शेष भारत भारत ही रहा जिसके गवर्नर जनरल चक्रवर्त्ती राज गोपालाचार्य घोषित किये गये। विभाजन हो जाने पर भी लोभी, लालची गुण्डों ने दंगा चालू रक्खा, फलतः गान्धीजी को अनशन करना पड़ा और किसी तरह दशा कुछ सुधरी। किन्तु विश्व को शान्ति का पाठ पढ़ाने वाले को एक साम्प्रदायिकता के पिशाच से पीड़ित एक हिन्दू नवयुवक नाथूराम विनायक गोडसे ने गोली से मार दिया। महात्मा गान्धी का अभाव आज हमें हरेक बात में खटकता है, फिर भी उनके प्रिय शिष्य डा॰ राजेन्द्र प्रसाद और पं॰ जवाहरलाल का नेतृत्व पाकर भारत दिन दुगनि रात चौगुनी उन्नति कर रहा है।

राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद—१८८४ ई॰ में गाँधीवाद के सच्चे समथक और स्वतन्त्रता युद्ध के वीर सैनिक डा॰ राजेन्द्रप्रसाद को राष्ट्रपति के आसन पर विराजमान देखकर किस भारतीय को हर्ष और संतोष न हुआ होगा। आपकी शान्ति प्रियता, सौजन्य और सौहार्द्र के कारण देश का प्रत्येक नागरिक आपको असीम

श्रद्धा से देखता है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद का जन्म ३ दिसम्बर सन् १८८४ ई० में बिहार के सारन जिले के जीरादेई गाँव में एक प्रतिष्ठित कुल में हुआ। आपके पिता मुंशी महादेव सहाय एक बड़े जमींदार थे। फारसी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। वे दीन दुखियों की सहायता और लोगों की सेवा करना अपना परम धर्म समझते थे। राजेन्द्र बाबू ने प्रारम्भिक शिक्षा एक मौलवी से उर्दू और फारसी में पायी। आपने हाई स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय की शिक्षा छपरा तथा पटना में पायी। सन् १९०६ ई० में आप बी० ए० में उत्तीर्ण हुए और अपने सहपाठियों में सर्वप्रथम रहे। आपने अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। वकालत में अधिक सफल न होने के कारण आप कानून के प्रोफेसर नियुक्त हुए और सन् १९१४-१६ ई० तक इस पद रहे।

राजनीति और समाज सेवा—राजनीति की ओर राजेन्द्र बाबू की प्रवृत्ति आरम्भ से ही थी। सन् १९११ ई० में कलकत्ते के कांग्रेस के अधिवेशन के आप सदस्य नियुक्त हुए। सन् १९१६ ई० की कांग्रेस के लखनऊ-अधिवेशन में आपने पहली बार सक्रिय भाग लिया। हिन्दी 'साहित्य सम्मेलन' के संस्थापन में आपका भी हाथ था। सन् १९१२ ई० में सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन में आप स्वागत समिति के प्रधान मन्त्री नियुक्त हुए। सन् १९२० ई० के राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने बिहार विद्यापीठ की स्थापना की। चम्पारन में नील की खेती करनेवाले कृषकों पर गोरों के असह्य अत्याचार को दूर करने के लिए महात्मा गान्धी ने जो आन्दोलन चलाया उसमें राजेन्द्र बाबू ने तन्मयता से कार्य करके जो विजय प्राप्त की उससे गान्धी जी के हृदय में अपने लिए स्थान बना लिया। तत्पश्चात् राजेन्द्र बाबू बिहार की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चुने गये। पश्चात् कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य नियुक्त हुए। सन् १९२२ ई० में आप अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के

प्रधानमन्त्री के पद पर निर्वाचित हुए। बिहार भूकम्प में आपने भूकम्प पीड़ित नर-नारियों के सहायतार्थ २५ लाख रुपया चन्दा में एकत्र किया और अपना तन-धन-मन सब उनपर न्योछावर कर दिया। असहयोग और स्वतन्त्रता के आन्दोलनों में भाग लेने के कारण आपको अनेक बार जेल की यातना सहन करनी पड़ी। फलस्वरूप आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। आपको दमे ने आ घेरा। जनवरी, सन् १९३४ ई० में जब आप जेल में थे, आपके दमा के असह्य कष्ट को देखकर सरकार ने आपको समय से पूर्व ही जेल से मुक्त कर दिया।

केवल बिहार ही नहीं, समस्त भारत के लोग राजेन्द्र बाबू को अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। आपने गांधीजी के हरि-जनोद्धार में भी सक्रिय भाग लिया। कांग्रेस की भी आपने अनुपम सेवा की है। कांग्रेस के कई बार आप प्रधान चुने गये। आप ही की अध्यक्षता में हमारा संविधान बना। गांधी-स्मारक कोष की सफलता आप ही के कारण हुई है। पटना से निकलने वाले 'देश' और 'सर्चलाइट' नामक पत्रों के आप ही संस्थापक हैं। आरम्भ में केन्द्रीय सरकार के आप खाद्य मन्त्री नियुक्त हुए। इस संकट के समय आपने बड़ी योग्यता से कार्य किया। सन् १९... ई० में स्वतन्त्र भारत की विधान निर्मात्री परिषद् के अध्यक्ष बनने का आपको गौरव प्राप्त हुआ। नवीन संघ-विधान के अनुसार आप भारत के प्रथम राष्ट्रपति सर्वमत से निर्वाचित हुए। इतिहास में भी आपकी विशेष रुचि है। हम भारतीय आपकी दीर्घायु के लिये भगवान से प्रार्थना करते हैं।

अभ्यास

(क) ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शासन सत्ता समाप्ति के बाद भारत की ... का वर्णन करते हुए सम्राज्ञी विक्टोरिया पर नोट लिखो।

(ख) राजाराममोहन राय, महर्षि दयानन्द एवं लोकमान्य गंगाधर तिलक जीवन परिचय देकर इण्डियन कांग्रेस पर नोट लिखो।

(ग) गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गान्धी, पं० जवाहरलाल, सरदार पटेल, चन्द्र बोस, मदनमोहन मालवीय, एनीबिसेण्ट में से स्वेच्छया किन्हीं तीन ट लिखो।

(घ) लाला लाजपतराय और मोतीलाल नेहरू के कार्यों का वर्णन करते हुए योग आन्दोलन पर एक टिप्पणी लिखो।

ङ) डा० राजेन्द्र प्रसाद का चरित्र चित्रण करते हुए सिद्ध कीजिये कि वे मा गान्धी के पक्के अनुयायी हैं।

च) स्वतन्त्र तथा विभक्त भारत के विषय में आप क्या जानते हैं? विस्तृत खो।

) निम्नलिखित में किन्हीं चार की प्रसिद्धि के कारण लिखिये :—
क, शिवाजी, गुरु नानक, महारानी लक्ष्मीबाई, पं० मदनमोहन मालवीय, हरलाल, डा० राजेन्द्र प्रसाद (सन् १९५५ ई० में पूछा गया)।

—o—

192